रामाश्रम सत्संग प्रकाशन

संत प्रसादी

(भाग 8)

परमसंत डा. करतार सिंह साहब

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

गाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

Scanned by CamScanner

रामाश्रम सत्संग प्रकाशन

संत प्रसादी

(भाग ४)

परमसंत डा. करतार सिंह साहब
के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

Scanned by CamScanner

प्रकाशक :
अध्यक्ष एवं आचार्य रामाश्रम सत्संग (रजि.)
ग़ाज़ियाबाद, उत्तर प्रदेश

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण 1000 (सन् 2002)

मूल्य :
रु. 10/- (दस रुपये)

प्राप्ति स्थान :
व्यवस्थापक, राम संदेश पत्रिका
9-रामाकृष्ण कॉलोनी, ग़ाज़ियाबाद (उ. प्र. एवं)
2-बी, नीलगिरि-3, सैक्टर-34, नौएडा 201307

मुद्रक :
गायत्री ऑफ़सेट प्रेस, ए-66, सैक्टर-2, नौएडा 201301

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी (भाग 8)

विषय सूची

क्रमांक			पृष्ठांक
1.	रामनवमी पर्व पर :	श्रीराम जी की महिमा - हर स्थिति में समभाव	09
2.	जन्माष्टमी पर्व पर :	कृष्ण जी की लीला - के विविध रूप-स्वरूप	19
3.	व्यासपूजन पर्व पर :	गुरु के प्रति शिष्य का - श्रद्धा-विनत समर्पण	30
4.	संतकबीर जयंती पर :	संतप्रवर की वाणी में - दीनता का अंग	40
5.	गोविंदसिंह जयंती पर :	अद्वितीय निजी बलिदान एवं जाति-उत्थान गाथा	47
6.	होली महोत्सव पर :	अहंकार की होली जले - प्रभुप्रेम का रंग चढ़े	56
7.	दीपावली त्योहार पर :	अंतर-बाह्य का अंधकार - के प्रकाश की आभा	65
8.	मकर संक्रान्ति पर :	सात्विक आहार-विहार व दानपुण्य का लाभ	73
9.	जन्मोत्सव आदि पर :	बधाई लें-दें पर रहस्य - जन्ममरण का समझें	79
10.	विवाह संस्कार पर :	आत्मा और परमात्मा - के मिलन का प्रतीक	83
11.	भारत की नारी पर :	सद्गुणों की महत्ता से - देश में पूजनीय रही	90

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी के पिछले भाग 6 में प्रस्तुत –

सम्पादकीय निवेदन

संत–सतगुरु मानव समाज के कल्याण के लिये उन्हीं के समान साधारण–सामान्य रूप में जीवन–लीला करने आते रहते हैं। कुछ भाग्यवान लोगों को उस सच्चिदानंद प्रभु की असीम सत्ता का ज्ञान, आभास एवं अनुभूति कराने के उद्देश्य से वे निरंतर अपनी कृपा–वृष्टि करते रहते हैं और यह 'प्रसादी' मनुष्य की कर्म इन्द्रियों की सीमित क्षमताओं अर्थात शब्द स्पर्श रूप रस गंध के माध्यम से भी प्राप्त करा देते हैं।

गुरुजनों के मुखारविन्द से निकले मधुर 'शब्द', चरण छूने या सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखने से 'स्पर्श', मनमोहनी आकर्षक छवि के दर्शन द्वारा 'रूप' और अपने सत्संग के 'रस' तथा सान्निध्य की 'सुगंध' – जैसे माध्यमों द्वारा साधकों का उद्धार करते हैं। इन सबमें उनकी मुखरित 'प्रवचन – वाणी का प्रसाद' अधिक स्थायी हो सकता है। .....और यदि उसे सँजो लिया जाये तो कालान्तर में भी जिज्ञासुओं के लिये प्रेरक और लाभदायक बना रहता है।

पूज्य परमसंत डा. करतार सिंह जी की अनुभूति से उन्हीं के कुछ प्रवचनों की अमूल्य निधि को 'संत प्रसादी' के छठे भाग में समाहित करने का सौभाग्य सेवक को मिला है। इस खंड में आंतरिक साधना का रहस्य एवं महत्त्व के साथ साधक के आचरण के सुधार–विषयक उपदेशों को लिया गया है।

कही–कही भाषा में परवर्तन की छूट लेने की धृष्टता हेतु क्षमा वांछित है। अनंत आभार सहित पुस्तक प्रस्तुत करते हुए आशा है कि हम सत्संगी साधक इसका पूरा लाभ उठायेंगे। ●●

उपरोक्त अभिव्यक्ति की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त सेवक और क्या निवेदन करे?....बस, यही कहना है कि अब संत प्रसादी के अमूल्य भंडार में भाग 7 भी अभिवृद्धि करेगा–इसी पुनीत मनोभावना एवं विश्वास के साथ–नववर्ष, नयी शती एवं नूतन सहस्त्राब्दि की शुभकामनाओं सहित, यह 'प्रयास' भी सादर समर्पित है।

नौएडा, जनवरी 2001 – विनीत : सतीश वर्मा

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी के भाग 7 के विषय में –

प्रकाशक की ओर से

बड़े सौभाग्य की बात है कि पूज्य संत डा. करतार सिंह जी की प्रवचन–प्रसादी का एक और संकलन प्रेमी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। साथ ही हर्ष की बात यह भी है कि इस पुस्तक का विमोचन–वितरण नववर्ष 2001 की वसंत पंचमी पर, पूज्य दादागुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज की जन्म तिथि के सुअवसर पर करने का प्रयास किया जा रहा है।

पूज्य भाई साहब के अमूल्य उपदेशों की यह निधि 'संत–प्रसादी' के प्रथम पाँच भागों में तो लगभग 10–15 वर्ष पूर्व से ही उपलब्ध हो रही थी। यह कठिन कार्य श्रद्धेय (स्वर्गीय) डा. महेश चन्द्र जी ने अपने अथक परिश्रम, सूझ–बूझ और कार्य कुशलता से सम्पन्न किया था।

इतने समय के पश्चात विगत वर्ष 1999 में दीपावली पर इसी श्रृंखला की नई कड़ी – 'संत–प्रसादी' (भाग–6) पेश की गई थी जिसका सुधी पाठकों ने अत्यंत उत्साह और उत्सुकता से स्वागत किया। इसी उत्साह और ललक की प्रेरणा से तथा पूज्यवर की अनुमति से स्फूर्त्ति पाकर संत प्रसादी का यह सातवां भाग अपने राम–संदेश के वर्त्तमान सम्पादक, श्री सतीश वर्माजी ने उसी मनोयोग से तैयार किया है, जैसा कि छठे भाग के चयन, संकलन व सम्पादन के समय किया था।

आशा है, रामाश्रम सत्संग के प्रकाशित साहित्य–भंडार में इस 32वीं पुस्तक की बढ़ोतरी भी सत्संग प्रेमी भाई–बहनों के लिये लाभदायी सिद्ध होगी। नववर्ष 2001 और वसंत पंचमी के भण्डारे की बधाई सहित !

ग़ाज़ियाबाद – विनीत : (डा.) शक्ति कुमार सक्सेना

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी के भाग 8 के सम्बंध में –

सम्पादकीय वक्तव्य

हमारे पूज्य संत डा. करतार सिंह जी के प्रेरक उद्‌बोधनों में भारत की संस्कृति की महानता के किसी न किसी पहलू पर निरन्तर प्रकाश डाला जाता रहा है। हमारी संस्कृति का आधार अध्यात्म रहा है। अध्यात्म ही ऐसा एकमात्र साधन या माध्यम है जिसे अपनाकर मनुष्य अपने जीवन के उच्चतम उद्देश्य अर्थात 'मोक्ष' अथवा ईश्वर-प्राप्ति कर पाया है....कर सकता है।

इस संस्कृति को हमारे ऋषि-मनीषियों ने अनंतकाल के अन्वेषण-परीक्षण के उपरांत एक ऐसी सुन्दर *'सर्वजन हिताय-सर्वजन सुखाय'* जीवन प्रणाली के रूप में ढाला जिसमें मानव को शारीरिक व मानसिक स्तर पर तथा हर सामाजिक क्षेत्र में सुख शान्ति मिले। ....और इन्हीं के साथ उसे जीवन का चरम आध्यात्मिक लक्ष्य भी प्राप्त हो सके।

ऐसी महान परम्परा को अनेकों महापुरुषों ने अपने आदर्शों और अलौकिक कृतित्व वाली जीवन लीलाओं द्वारा निरन्तर प्रकट एवं पुष्ट किया है। सभी संतों और सिल्सिले के बुजुर्ग-गुरुजनों ने ऐसी विलक्षण विभूतियों की विशेषताओं का केवल बखान और गुणगान ही नहीं, अपितु अपनी रहनी-सहनी और कथनी-करनी में स्वयं अपनाकर, हम जिज्ञासुओं के कल्याणार्थ उनका महत्त्व समझाया है।

इसी श्रृंखला में पूज्य भाई साहब ने हमारी संस्कृति के मूर्धन्य महापुरुषों, देश के प्रमुख पर्व-त्योहारों एवं कुछ संस्कारों आदि में निहित आध्यात्मिकता के तत्त्वों को समय-समय पर उजागर किया है। हमें निरन्तर सत्संग करके, श्रवण-मनन और निध्यासन के साथ स्वयं अनुसरण करने का संदेश और प्रेरणा दी है।

पूज्य गुरुदेव की सतत कृपा और श्रद्धेय भाई साहब की 'शुभकामना' से ऐसे ही बहुमूल्य प्रवचनों में से कुछ विशेष का चयन इस संकलन में समाहित किया गया है। उन्हीं की कृपा के प्रसाद स्वरूप इस प्रयास से पूर्ण हुई प्रस्तुति गुरुपूर्णिमा के शुभ पर्व पर, उन्हीं के चरणों में भेंट है।

नौएडा, 24/7/2002 – विनीत : सतीश वर्मा

Scanned by CamScanner

संत प्रसादी के भाग 8 के विषय में :

प्रकाशकीय निवेदन

बहुत आनंद की बात है कि हमारे रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद के प्रकाशित आध्यात्मिक साहित्य की कड़ी में यह 33वां प्रकाशन आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

इस संकलन की एक विशेषता है कि इसमें पूज्य संत सरदार करतार सिंह साहब के ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रवचन/लेख संग्रहीत हैं जो कि हमारे पुराने महापुरुषों की जयंतियों, पवित्र पर्व त्योहारों और जन्म तथा विवाह संस्कारों जैसे विशेष अवसरों पर दिये गये हैं। इन सब आयोजनों और उत्सवों के पीछे जो गहरा आध्यात्मिक संदेश छिपा हुआ रहता है, उसका वास्तविक अर्थ उन्होंने स्पष्ट समझाया है।

साथ ही हर्ष की बात ये भी है कि इस पुस्तक को गुरु पूर्णिमा (बुधवार दिनांक 24/7/2002) जैसे पवित्र पर्व के शुभावसर पर खंडेलवाल धर्मशाला, पहाड़गंज, नई दिल्ली के समागम में विमोचन-वितरण के लिए तैयार किया जा सका है।

मुझे आशा और विश्वास है कि संत-प्रसादी का यह आठवां पुष्प भी सत्संग प्रेमी भाई-बहनों के लिये पहले की तरह ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा और पाठकों को लाभान्वित करेगा।

ग़ाज़ियाबाद — विनीत : (डा.) शक्ति कुमार

आभार

पुस्तक की प्रस्तुति में पूज्यवर के प्रवचन कैसेटों और उनके लिपिबद्ध आलेख दिलाने में आदरणीय डा. शक्ति जी और श्रीयुत देवेन्द्र नारायण कुलश्रेष्ठ जी की कृपा रही है। साज-सज्जा और प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में लाल बाबू सिंह की सहायता सराहनीय है। इन सबके के सहयोग के प्रति हार्दिक आभार!

विषय चयन के अभावों तथा भाषा के यहाँ-वहाँ बदलाव करने तथा अशुद्धियों के लिये यह अकिंचन ही उत्तरदायी है। - सम्पादक

Scanned by CamScanner

संतों की वाणी

एक राम दशरथ घर डोले
एक राम घट-घट में बोले
एक राम का सकल पसारा
एक राम तिरगुन से न्यारा

प्रभु की देन का शुक्रिया

प्रभु की देन का शुक्रिया यह है कि उसका सही इस्तेमाल किया जाये और वो ये है कि उन कर्मो का त्याग कर दें जिनसे प्रभु की देन या कृपा में गिरावट आती हो और ऐसे कर्म करते रहें, जो उसे प्यारे हैं।

- पूज्य दादागुरु महात्मा रामचन्द्र जी

केवल एक प्रेम का ही नाता

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता - केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं - चाहे वो सज्जन हों या दुष्ट - मैं उन्हें प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका। वो हमेशा मुझपर भरोसा रख सकते हैं।

- पूज्य गुरुदेव डा. श्रीकृष्ण लाल जी

Scanned by CamScanner

अहंकार से प्रभु नहीं मिलते। चाहे आप कोई भी साधन करें – दीनता को तो अपनाना ही होगा। जिसके भीतर में सच्ची दीनता है वह स्वयं भी प्रसन्न रहता है और दूसरों को भी आनंदित करता है। प्रभु को दीनता बहुत प्यारी है।

– डा. करतार सिंह

Scanned by CamScanner

Scanned by CamScanner

रामनवमी उत्सव पर

भगवान श्रीराम की महिमा : हर स्थिति में समभाव

रामनवमी बड़ा पवित्र दिन है। यह भगवान राम का जन्मदिन होता है। आप सबको हार्दिक बधाई है। हमें स्मरण करना है कि भगवान राम की कौन सी विशेषताएं थीं जिसके परिणामस्वरूप भारत के सब लोग राम की पूजा करते हैं, उनके नाम का आज भी भजन–गुणगान करते हैं आदि–आदि।

भगवान राम के जन्म से ही उनके गुणों का संसार को अनुभव होने लगा। आप बचपन में अधिकांश समय महान योगी वशिष्ठ के भी चरणों में रहे। उन्होंने भगवान राम को उपदेश दिया और कथा सुनाई। वे उपदेश और कथा जिस पुस्तक में अंकित है उसको 'वशिष्ठ योग' कहा जाता है, जिसका संसार में बड़ा महत्त्व है। उस पुस्तक में ज्ञान साधन का बड़ा महत्त्व है। ज्ञान–साधना की कुछ मुख्य बातें संक्षिप्त में निवेदन कर दूँ।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर में आत्मा है, परमात्मा है। परन्तु अपने सच्चे स्वरूप की न तो अनुभूति होती है और न बुद्धि मानती है। हम सब पाँचों शरीरों–तन, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आदि में लिप्त रहते हैं।

महर्षि वशिष्ठ ने षिक्षा दी थी कि, "तु यह शरीर नहीं हो, प्राण, मन, चित्त और अहंकार भी नहीं हो, तुम परमात्मा स्वरूप हो, आत्मा हो, *"तत्वमसि"*। यही नहीं षिष्य रूप में

Scanned by CamScanner

राम को इस सत्य की अनुभूति भी करायी। अनुभूति एक दो सैकेन्ड की नहीं, उनका पूरा जीवन 'ब्रह्ममय' ही बना रहा। आत्मा के अतिरिक्त किसी विषय में वे फँसे नहीं। ऐसा गुणमय आदर्श जीवन शायद ही इतिहास या साहित्य में कहीं मिलता हो।

आज उनका जन्मदिन है। 'राम' जो रमे हुए हैं, सर्वव्यापक हैं। जब उन्होंने बाल्यावस्था में गुरु वशिष्ठ से परमात्मा और आत्मा के गुणों को प्राप्त किया, तब भी उनमें गुणग्राही सहज भाव वाली सरलता थी। सरलता उसमें होती है, जिस व्यक्ति पर बुराई, भलाई कोई अपना प्रभाव नहीं डाल सकें। वे दुःख-सुख दोनों में आनंदित रहते हैं। प्रसन्नता कुछ और है, आनंद कुछ और। प्रसन्नता मानवता का अनुभव है, परन्तु आनंद परमात्मा का स्वरूप है।

हम रामायण पढ़ते हैं। रावण को जलाते हैं, हर साल दशहरा मनाते हैं। किन्तु उन महापुरुष राम के जीवन का अनुसरण नहीं करते। आज हम सब व्रत रखेंगे। ठीक है, परन्तु प्रयास करना चाहिए भगवान राम के कौन से गुण थे, जिसके कारण उनकी याद में आप व्रत रखते हैं। व्रत का अर्थ है दृढ़ संकल्प। दृढ संकल्प लेना ऐसा होना चाहिए कि जब तक कि अमुक बुराई दूर नहीं होगी, मैं खाना नहीं खाऊंगा। परन्तु हम तो ज़बान के रस में फँस जाते हैं। शाम को व्रत खोलकर खूब अच्छी-अच्छी वस्तुएं खायेंगे और अन्य किसी प्रण या संकल्प का क्या काम। यह व्रत नहीं है।

व्रत का अर्थ है स्वनिरीक्षण के बाद दृढ़ संकल्प करना। अपने में जो कमज़ोरियां हैं एक-एक कर उन्हें देखना और उनसे मुक्त होना। उनसे मुक्त होने के साहस को व्रत कहते हैं, जैसे यह सोच लेना कि चाहे महीना भर लग लाये पर झूठ

Scanned by CamScanner

नहीं बोलूँगा। इस आदत से जब तक छूट नहीं जाऊंगा कोई मुझे गालियां दे तो भी मैं प्रभावित नहीं होऊंगा, चाहे कितना ही समय लग जाये, भूखा ही रहूंगा। जो लोग व्रत रखते हैं मैं उनकी प्रतिक्रिया या आलोचना नहीं कर रहा हूँ, केवल अपने विचार बता रहा हूँ। वशिष्ठ जी का जो भाव था, वह बता रहा हूँ।

भगवान राम की जो लीला है वह बहुत प्रेरणादायक है। वशिष्ठ जी के पास कामधेनु गाय थी, इससे जो वस्तु मागों वह वस्तु मिल जाती थी। महर्षि विश्वामित्र जी वशिष्ठ जी के पास गये और उस कामधेनु गाय को मांगते हैं। वशिष्ठ जी कहते हैं "कामधेनु गाय मैं नहीं दे सकता। वह परमात्मा रूप है। बाकी जो चाहो ले लो। कामधेनु मैं नहीं दूंगा। जिसने परमात्मा को पा लिया है, वह व्यवहार से अपना प्रकाश दे सकता है। परमात्मा को नहीं दे सकता।" विश्वामित्र जी ज़िद्दी थे। उन्होंने वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों को मार दिया। महर्षि वशिष्ठ जी पूर्ण ज्ञानी थे – सब दुख–सुख से ऊपर – उनमें समभाव सदैव बना रहता था, अतः उस घटना से तनिक भी अंतर नहीं आया।

दोनों ऋषियों की तुलना ध्यान से करिये। किसी की एक संतान चली जाये तो सारा परिवार दुखी हो जाता है। वशिष्ठ जी के सौ पुत्रों को मार दिया गया। उनके सामने मारा जाता है, किन्तु उनकी समता में कोई अंतर नहीं आया। भगवान राम के गुणों की भी यही स्थिति रही, तो उनके गुरु की स्थिति का क्या कहना! साधना का सार यही है –

दुख–सुख दोनों समकर जानो, यह गुरुज्ञान बताई।
कहु नानक बिन आपा चीन्हें, मिटै न मन की काई।।

Scanned by CamScanner

जब तक जिज्ञासु का अहंकार खत्म नहीं हो जाता, वह सुख–दुख से मुक्त नहीं हो सकता। इसी कारण हम सब दुखी हैं क्योंकि हम सब द्वन्द्वों में फॅसे हैं, सम–अवस्था तक पहुॅचे नहीं हैं। इसके बिना कोई भी साधना सफल नहीं मानी जायेगी चाहे वह किसी प्रकार की, किसी भी धर्म की क्यों न हो। *'दुख सुख दोनों समकर जानो।'* दुख सुख, आशा निराशा सबमें आपका चित्त एक सम–भाव में स्थिर रहे।

साधना केवल ऑखें बंद करना ही नहीं ; यह तो प्रथम श्रेणी का साधन है। आप एकदम ग्रेजुएट नहीं बन सकते आपको पी.एच.डी की डिग्री नहीं मिल सकती। कोई संत नहीं दे सकता, जब तक आपमें सत्यता नहीं आती। और इस गुण में कभी विक्षिप्तता नहीं आये। सहज वृत्ति, सहज स्वभाव स्थायी बने।

भगवान राम के जीवन में कई ऐसी घटनाएं घटीं। कौशल्या के श्रेष्ठ सुपुत्र हैं। संतान में सबसे बड़े हैं। पिता ने कहा, अमुक तिथि को राम को राजगद्दी पर विराजमान किया जाये। कैकयी के मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई – पटरानी बनने के लिए। जो भी कहिए।

वशिष्ठजी ने प्रारंभ से जो ब्रह्मज्ञान की षिक्षा दी कि– *'व्यक्ति को समरूप में रहना चाहिए'*– उसे परिवार में सिवाये राम के कोई भी व्यक्ति प्राप्त न कर पाया। पिता दशरथ नहीं टिक सके, माता कौशल्या नहीं ठहरीं। कैकयी तो खैर जल उठीं। बाकी छोटे भाई भी नहीं ठहर पाये। सब दुखी और नाराज़ हो गये – यह बात क्या हुई, हम ऐसा नहीं होने देंगे। उनके परिवार की ही नहीं, यह हम सबकी स्थिति है। ज़रा सी बात से मन चंचल हो जाता है, राग–द्वेष में फंस जाते हैं।

Scanned by CamScanner

अभिमान में फंस जाते हैं। अहंकार की अग्नि से जलते हैं। मैं अपने आपको भी कह रहा हूँ और आपको भी कह रहा हूँ। यह हम सबकी स्थिति है। हम चाहते हैं आज ही हमे भगवान राम के दर्शन हो जायें। भगवान राम के दर्शन तभी होंगे जब आप भगवान राम जैसे बन जायेंगे।

तू–तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ।

अपने अहंकार को छोड़ दें। हम सब अहंकार में बैठे हैं। सब बातों को छोड़ दीजिए केवल 'आत्म स्थिति' में रहें। परमात्मा की चरण रज बन जायें। बाकी सब बातों का परित्याग करना चाहिए। ये बातें कि मेरा पति ऐसा है, मैं ऐसी हो जाऊं, मेरा बेटा ऐसा हो जाये, सब मन की हैं। हम सब मन की पूजा करते हैं।

दशरथ की संतान साधारण नहीं थी, हमारी जैसी नहीं थी हममें हज़ारों अवगुण है। मगर फिर भी वे विक्षिप्त हो गये, व्याकुल हो गये। अपने आपको, अपनी आत्मा को भूल गये। केवल राम ही दृढ़ संकल्प थे। राम ने पिता से कहा – "आपने वचन दिया है उसका पालन करें। क्षत्रिय धर्म का पालन करें। आप तो सूर्यवंषी क्षत्रिय हैं जिनका *'प्राण जाये पर वचन न जाहिं।'* आप मॉ को दिये प्रण को पूरा करें। आप इसकी चिन्ता मत करें।"

कोई बाप ऐसी बातें कैसे सुन सकता है। किन्तु राम ने चिन्ता नहीं की। घर गये। लक्ष्मण और सीता जी को साथ लिया और चौदह वर्ष वनवास के लिये चले गये। संसार के इतिहास में यह असाधारण बात थी। पिताजी की ग़म में कुछ दिनों बात मृत्यु हो गयी। कैकयी ने जो यह वर मांगा

Scanned by CamScanner

था वह अत्यंत दुखित अवस्था में रह गयी क्योंकि भरत चौदह वर्ष तक राजगद्दी पर नहीं बैठे। कौशल्या की दषा का तो कहना ही क्या। अयोध्या के बाहर कुटिया बनाकर रहे तथा चौदह वर्ष तक भगवान राम की खड़ाऊ सामने रखकर उनकी पूजा करते रहे। कैकेयी माता के दुख और पष्चाताप का यह भी अत्यंत दुखद कारण रहा।

आगे चलकर भगवान राम की और भी कई लीलाएं समय–समय पर होती रहीं। सुन्दर वन में ही लक्ष्मण ने क्रोध में आकर शूर्पणखा की नाक काट दी। यह सम–अवस्था नहीं है। परन्तु सब राम नहीं बन सकते। सब परमात्मा की तरह नहीं हो सकते। हम सबकी स्थिति भी वैसी ही है, लक्ष्मण जैसी। भले ही लक्ष्मण जी भगवान राम के चरणों में रहते थे, लेकिन राम की स्थिति या महर्षि वशिष्ठ की स्थिति उनमें नहीं आयी।

इसके पष्चात सीता का अपहरण हुआ। लक्ष्मण वन में स्वर्ण मृग के पीछे चले गये। लक्ष्मणजी भी वन में राम को ढूढ़ने के लिए चले गये। रावण आता है। उसने साधु का रूप बदला हुआ था। वह भिक्षा मांगता है। हमारे यहॉ की संस्कृति है कोई भिखारी द्वार पर आ जाये तो वह खाली हाथ न जाये। सीता स्वभाववश, नीतिवश, धर्मवश बाहर आयीं। रावण कहता है, "नहीं। यह जो रेखा बनी है उसके बाहर आकर दो। घेरे के भीतर से दान नहीं दिया जाता। दान देना है तो बाहर आकर दो।" सीता रावण को नहीं पहचान पायी। वह बाहर आयीं। रावण उठाकर ले गया। खैर! राम वापस आये, बहुत दुख हुआ किन्तु राम सम–अवस्था में रहे।

Scanned by CamScanner

तो आज का दिन जो है यदि आप साधना की शिखरता को प्राप्त करना चाहते हैं, तो सम अवस्था में रहने का अभ्यास करना ही होगा। दुःख-सुख में एक जैसा रहना होगा। बार-बार सीखना है कि -

'दुःख सुख दोनों सम कर जानो।'

प्रतिकूल-अनुकूल अवस्थाएं दिन में कई बार आती हैं, हम विक्षिप्त हो जाते हैं। रात को नींद नहीं आती। नींद की गोली खाते हैं। यह हमारी साधना नहीं। यह हमारी गिरावट की निशानी है।

आज भगवान राम के अवतार का दिन है। इसे मनाना चाहिए, बड़े उत्साह से मनाना चाहिए। किन्तु भगवान के गुणों को याद करना चाहिए। रामायण का पाठ करना चाहिए, विशेषकर सुन्दरकाण्ड का पाठ ज़रूर करना चाहिए।

आप सब भी दृढ़ संकल्प लें, 'हम दुःख-सुख में भी सम अवस्था में रहने का अभ्यास करेंगे। मात्र कहने से नहीं कर पायेंगे। इसमें बहुत समय लगेगा। एक जन्म नहीं, कई जन्म लग सकते हैं। परन्तु यह बात रोज़ साधना में बैठने से पहले दुहरायें कि मैं सारे दिन सम अवस्था में रहने का प्रयास करूंगा। समय तो लगेगा।

रोज़ हम समाचार पढ़ते हैं। कुछ बातें अनुकूल होती हैं कुछ प्रतिकूल, हम उनमें ही फंस जाते हैं। प्रतिकूल बातें होती हैं तो हम उद्विग्न हो जाते हैं और बहुत बोलते हैं। और अनुकूल हुई तो हमारे अहंकार की स्थिति बहुत बढ़ जाती है, हम अनुमान नहीं कर सकते। सच्चा सुख सम अवस्था में रहने से होता है। कितनी भी पाठ-पूजा कर लीजिए, यदि समअवस्था नहीं आयी तो, कुछ नहीं होगा।

Scanned by CamScanner

शत्रु में भेद न देख पाना यह हमें नहीं आता।" हनुमानजी रोते हुए यह बात कह रहे हैं। भगवान कहते हैं अभी तुममें समता नहीं आयी है, और परिपक्व बनें। अभी परिपक्वता नहीं आयी है। चलो मेरे साथ।"

हनुमानजी भी साथ गये हैं। रावण के चरणों के समीप खड़े होकर करबद्ध प्रार्थना की, "इस नादान से भूल हो गयी है, आप क्षमा कर दें। आप इसे ब्रह्मविद्या दीजिए।" रावण ने लक्ष्मण को उचित शिक्षा दी है। क्या मैं और आप ऐसा कर सकते हैं?

मैं दुबारा आपसे अनुरोध करूंगा आज रामायण पाठ करिये – विशेषकर, सुन्दरकाण्ड का। और भगवान राम के जीवन के आदर्श गुणों के अनुसरण का प्रयास करें। रामायण को एक कहानी की पुस्तक मत समझिए। वशिष्ठ जी ने जो शिक्षा दी है, उस पुस्तक का नाम 'योग–वशिष्ठ' है उसे कथा–कहानी जैसी मत समझिए। बड़ी ऊँची पुस्तक है, वह भी पढ़नी चाहिए।

रामनवमी का उत्सव मनाने में सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि भगवान राम के गुणों का केवल स्मरण और गुणगान ही न करके, यथासंभव अनुसरण करने का प्रयास करना चाहिए। रामायण जैसे ग्रंथों को दो–चार बार पढ़ना, रामायण पाठ कर लेना काफी नहीं है, भगवान के गुणों को अपने जीवन में अपनाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेव आपको शक्ति दें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

गये फिर बोले – "पीलो, नहीं तो लाठी से पिटाई करूंगा।" उस बालक की सरलता पर मुग्ध होकर भक्त–वत्सल भगवान सचमुच दूध पी गये। साधना में सरलता एक महान गुण है जो हमारे में आती नहीं। नामदेव की सरलता पर भगवान मुस्कराते हुए, साक्षात दूध पी जाते हैं और बालक लाठी उठाकर सफलता पर संतुष्ट होकर नाचता गाता चला जाता है। और फिर विटठल भगवान ऐसे रीझे कि रोज़ ही नामदेव के पास रहने लगे और बातें करते थे उसके साथ।

एक और प्रसिद्ध प्रसंग है प्रभु की लीला का। सुदामा और कृष्ण बालक हैं। गुरु संदीपन के आश्रम में दोनों शिष्य हैं। लकड़ियां इकट्ठी करने के लिये गये हैं तो बारिश हो गयी, सर्दी लगी तो साथी सुदामा से पूछा, "भैया, कुछ है खाने के लिये"? सुदामा के पास चने थे, वह छिपाकर खा रहा था। आवाज़ तो आ रही थी मगर सुदामा झूठ बोल देते हैं – "नहीं मेरे पास तो कुछ नहीं है।" हम भी ऐसे ही स्वार्थी और कंजूस हैं। भगवान भिन्न–भिन्न रूपों में आते हैं और हमारी हालत को देखते हैं। वो तो दर्शन देने आते हैं पर हम स्वार्थवश वंचित रह जाते हैं।

काफी समय व्यतीत हो गया , भगवान को याद है कि सुदामा परम मित्र तो थे किन्तु गुरुकुल वाले दिनों में, एक दिन उनको चने नहीं खिलाये थे। ग़रीबी के कारण पत्नी मजबूर करती है कि " इतने बड़े महाराजा कृष्ण के कैसे मित्र हो कि जो इतनी निर्धनता में जी रहे हो? उनके पास जाओ तो सही"। सुदामा के फटेहाल में, द्वारका पहुँचने पर भगवान अपने दरबार से उठकर आते हैं, उसका आलिंगन करते हैं

Scanned by CamScanner

जबकि वो धूल-मिट्टी से भरा हुआ है। उसको लाकर अपने सिहासन पर बिठाते हैं और स्वयं नीचे बैठकर उसके पॉव धोते हैं, और वो जल स्वयं सेवन करते हैं।

रुकमणी जी कहती हैं "ये क्या कर रहें हैं आप?" इस चरण धोकर पीने में आनंद भगवान को आ रहा था रुकमणी क्या समझतीं उसको। रुकमणी जी क्या, हम ही क्या समझेंगे कि वो धूल से भरा हुआ पानी बीमारी पैदा करेगा या कुछ और हो जायेगा या इसमें नीचापन दिखेगा – परन्तु प्रभु तो निःसंकोच पी लेते हैं।

भगवान तो अपने प्रिय मित्र (भक्त) के आने भर की प्रतीक्षा में थे। सुदामा के आते ही ऐसे आनन्दित हो जाते हैं कि अपनी दैवी लीला से उसके घर को सोने का बना देते हें। दुनिया भर की दौलत उसमें भर देते हैं। संसार की ही दौलत नहीं दी, उसके अतिरिक्त परमार्थ भी प्रदान कर दिया।

भगवान कितने विशाल हृदय हैं उनकी लीला विलक्षण है। एक तरफ़ तो सुदामा थोड़े से चने के लिये कंजूसी करते हैं और उधर भगवान ने कितनी कृपा करी है। सुदामा जी लौटे हैं तो अपनी धर्मपत्नी को एक नये रूप में सजी-धजी देखा है और आष्चर्य से पूछा – "इतने सुन्दर कपड़े और कीमती आभूषण तू कहॉ से ले आयी ?" उसने कृष्ण-कृपा का पूरा विवरण आदि बताया। अस्तु, भगवान के अपनी कृपा की लीला दिखा देने के विचित्र तरीके हैं।

एक और अदभुत लीला दिखाई है भगवान कृष्ण ने – सुभद्रा जी को प्रेम की महत्ता समझाने के लिये। सुभद्रा को गर्व हो गया कि वो तो भगवान को सबसे प्रगाढ़ प्रेम करती

Scanned by CamScanner

है परन्तु भगवान इस बात से संतुष्ट नहीं होते। भगवान से पूछा गया तो भगवान कहते हैं – "अच्छा एक तराजू ले आओ। एक तरफ़ मैं बैठ जाता हूँ, एक तरफ़ जो तुम्हारे पास आभूषण हैं वो डाल दो। तुम्हारा ज़ेवर वाला पलड़ा भारी हो जायेगा तो मैं सब कुछ तुम पर न्यौछावर कर दूँगा।" उन्होंने बहुत ज़ेवर डाला, खाली कर दिये ख़जाने, परन्तु भगवान का पलड़ा भारी रहा। सुभद्रा ने सोचा था ये कौन बड़े भारी वज़न वाले हैं – मैं जब थोड़े बहुत ज़ेवर डालूँगी तराजू का पलड़ा मेरे हक में नीचे चला जायेगा।

सुभद्रा ज़ेवर तो डालती रहीं पर मन में अहं भावना और शंका रही – और ये बड़ी बाधा है परमार्थ के इस रास्ते की। हम सब लोग इस अहं वृत्ति तथा शंका से प्रभावित हैं। प्रभु चरणों में सच्चा प्रेम नहीं है, पूर्ण विश्वास नहीं है। प्रेम की शक्ति की यह कैसी साधना है – वो पलड़ा ही नीचा नहीं हुआ बल्कि भगवान ने अपना सब कुछ सुभद्रा को दे दिया।

"दर्शन देख जीवा उर तेरा, पूरण काम होये तब मेरा'।

दर्शन के क्या अर्थ हैं उन्हें समझिये। *"पूरण काम होय तब मेरा'* पूरण काम क्या है? संसार में जितने भी सुख है वो प्राप्त हो जायें और समस्त सुखों मे परम सुख है – मोक्ष। हमारा लक्ष्य भी तो परमात्मा के वास्तविक दर्शन करना ही है, जिसके बाद मनुष्य जन्म–मरण के चक्कर में न पड़े। केवल शरीर के दर्शन से उद्देष्य की पूर्ति नहीं हो सकती। शरीर के दर्शन, गुरु के शरीर के दर्शन, तस्वीर के दर्शन या परमात्मा के अन्य किसी स्वरूप के दर्शन वास्तविक दर्शन नहीं है, हाँ – इससे थोड़ा उत्साह उत्पन्न होता है, श्रद्धा बढ़ती है, परन्तु वास्तविक दर्शन कुछ और ही है।

Scanned by CamScanner

भगवान कृष्ण का सारा जीवन ही अदभुत लीला-प्रदर्शन रहा है। उनकी लीलाओं के क्रम को हम *'रास लीला'* भी कह सकते हैं। वो सारा जीवन ही रास लीला करते रहे। ऐसी थी रासलीला जो वृन्दावन में ही नहीं हुई, जहॉ-जहॉ भी उन्होंने अपने पवित्र चरण कमल रखे, वहॉ-वहॉ हुई। भागवत् पुराण, महाभारत तथा अनेकों साहित्यिक ग्रंथ सब उनकी लीलाओं से भरे हुए हैं। उनको वर्णन करना बहुत कठिन है।

गीता के माध्यम से उन्होंने हम सब पर विशेष कृपा की है - जब उन्होंने अर्जुन को ये बताया कि - "तू कर्म कर, कर्म से डर मत। कर्म से घबरा नहीं, देख मैं भी कर्म करता हूँ। दूसरा उदाहरण सूर्य का है। सूर्य भी कर्म करता है, 24 घंटे धरती के इई-गिर्द घूमता है। परन्तु मेरे और सूर्य के कर्मो में और तुम्हारे कर्मो में भेद है कि तू जो अच्छे कर्म करेगा तो अच्छा फल मिलेगा और यदि बुरे कर्म करेगा तो बुरा फल मिलेगा। परन्तु मैं और सूर्य जो निष्काम कर्म करते हैं हमें उन कर्मो का फल नहीं भोगना पड़ेगा।"

"ब्रह्म ज्ञानी सदा निर्लेप जैसे जल में कमल अलेप।"

... तथा ...

"ब्रह्म ज्ञानी सदा निर्दोष, जैसे सूर सुरभ को सूख।"

ये दोनों उदाहरण भगवान ने अर्जुन को दिये हैं। वो न्यारे रहते हैं-कमल के फूल की भांति जो नीचे कीचड़ होती है और ऊपर रहते हुए बड़ी सुन्दरता के साथ खिला रहता है, स्वयं भी सुन्दरता से विभोर होता है और संसार को भी सुन्दरता प्रदान करता है।

इसी तरह हमारे पूज्य गुरुदेव भी कहते रहे हैं। जो ज्ञानी ब्रह्मज्ञानी पुरुष होते हैं उनकी भी वही स्थिति होती है

Scanned by CamScanner

जो भगवान की है। ये करोड़ों में से कोई एकाध पुरुष ऐसा उत्पन्न होता है जो भगवान की तरह होता है। अर्जुन को तो अट्ठारह अध्याय गीता समझाये, परन्तु विश्व में हम सबके लिये उपयोगी प्रेरणा दी है कर्म योग का रहस्य बताकर कि कर्म कैसे करने चाहिए। क्योंकि सभी को कर्म तो करना ही पड़ता है।

गीता में तीन अध्याय हैं : तीसरा , चौथा और पाँचवां जिनमें कर्मो के द्वारा हम भगवान की प्राप्ति कैसे करें ये बताकर उन्होंने विशेष कृपा की। महापुरुषों ने, गांधी जी ने, अरविन्द जी ने, लोकमान्य तिलक जी ने विशेषतः इन तीन अध्यायों पर अपनी कलम चलायी है। और भी कई महापुरुष हुए हैं जिन्होंने गीता पर टीकाएं लिखी हैं परन्तु ये तीन महापुरुष तो हमारे देशवासियों में खूब प्रसिद्ध हैं।

जंन्माष्टमी के पवित्र त्योहार का दिन मनायें, बड़े अच्छे ढंग से मनाते रहिए परन्तु स्वनिरीक्षण भी करना चाहिए। और यह मनन भी करना चाहिये कि हम यह दिन क्यों और कैसे मनाते हैं। मैं स्वयं निवेदन कर रहा हूँ मैं आपको सच बताता हूँ मेरे चित्त पर भी मलीनता है। मै, और मेरे पर भी संस्कारों की मलीनता हैं। मैं स्वयं प्रार्थना करता हूँ कि भगवान कृष्ण मुझे भी सत्यनारायण जी का प्रसाद दे दें, अष्टमी का प्रसाद दें जिसमें मेरा भी चित्त निर्मल हो जाये मैं भी कह सकूं कि मैंने भी गीता पढ़ी है।

कहाँ तक कहूँ इतनी घटनायें उनके जीवन में हुई थीं और वे सभी की सभी लीलाएं अद्भुत थीं।. सबसे विचित्र लीला जो उन्होंने की उसको हम रास 'लीला' के नाम से

Scanned by CamScanner

हम पढ़ लेते हैं, प्रश्न कर लेते हैं, बोल लेते हैं परन्तु वास्तव में हमने ऐसा अर्पण कभी भी गुरु के या भगवान के चरणों में नहीं किया। हम तो अपनी छोटी–छोटी चीज़ें भी अर्पण नहीं कर पाते। अनेक महापुरुषों ने परमात्मा को संबोधन किया है स्त्री रूप में, जो कि वास्तव में समर्पण की प्रतीक है। इसलिये यह बड़ा उत्तम साधन है। मैं बार–बार कहा करता हूँ पुरुष भी साधना में बहुत शीघ्र सफल होगा जब वह स्त्री के गुणों को अपनायेगा।

ज्ञानी ऐसा कह देता है : "शरीर भी मेरा नहीं, प्राण भी मेरे नहीं, मन भी नहीं" – ऐसा कर पाने का बहुत ऊँचा स्थान है साधना में। परन्तु वास्तविक तौर पर ऐसा समझना, सर्वस्व ही उसका समझना, सब कुछ प्रीतम का, मेरा है ही नहीं अर्थात मैं और मेरापन निकाल देना कहने में बड़ा आकर्षक लगता है, मगर वास्तविक रूप में, कर्म व्यवहार में यह बहुत कठिन है। ज़रा सी ऊँची नीची बात कह देते हैं तो तूफ़ान आ जाता है घर मे, चाहे वो पुरुष हो चाहे स्त्री। ये क्या व्यवहार है ? यह सब दिखावटी है।

इस अवसर पर मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि भगवान कृष्ण की लीलाओं का स्मरण करें। महात्मा गांधी कहा करते थे और मुझे भी बड़ा अच्छा लगता है कि गीता का बारहवां अध्याय सबको रोज़ पढ़ना चाहिए। मेरा निवेदन है कि उस अध्याय के अन्तिम 8/10 श्लोक (12 से 19 तक) तो बड़े धैर्य के साथ अर्थो को समझते हुए पढ़ें। जिनकी साधना में तीव्रता नहीं आती उन्हें तो ये श्लोक कुछ दिन या कुछ सप्ताह तक रोज़ पढने चाहिये। भाइंयों को कहता हूँ कि इसका लाभ

Scanned by CamScanner

अवश्य होगा। परन्तु कोई भी व्यक्ति मुझे कृतार्थ नहीं करता। ऐसा करके भी प्रभु कृपा प्राप्त न हो तो पूज्य गुरुदेव की एक बात याद आती है। वे कहा करते थे कि "यदि इष्टदेव कंजूसी करें तो उनके पीछे ही पड़ जाना चाहिए और कहना चाहिए कि या तो हमें अपनी बख़्शीश से मशकूर (कृतार्थ) करो नहीं तो आप ही हमें सीनाज़ोरी करने पर मजबूर करोगे।

ये प्रेम लीला विचित्र है इसमें विद्या, व्याकरण या चतुराई काम नहीं करती। प्रेम में, भक्ति भाव में, बुद्धि को एक तरफ रख देना चाहिए। बड़ी कठिनाई होती है – जिसके लिये प्रार्थना करनी चाहिये ईश्वर से, कि हे प्रभु प्रेम प्रदान करो, या ज्ञानी हैं तो सच्चा ज्ञान प्रदान करो। प्रेम में या भक्ति और ज्ञान में वास्तव में कोई अन्तर नहीं है। जब तक मन की साधना रहती है, भक्ति कहलाती है। जब ये आत्मिक स्तर पर, राधा जी के स्तर पर हो जाती है तो ये आत्मा का रूप धारण कर लेती है। उसमें कान्ता भाव आ जाता है जो बहुत ऊँची अवस्था है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी भगवान के दर्शन किये हैं – 17 या 18 भिन्न-भिन्न तरीकों से और संसार को बताया है कि सभी धर्मों के – सभी साधनों के मार्ग सही हैं। स्वामी विवेकानंद जी सिर्फ दार्शनिक तौर से कहते हैं परन्तु उनके गुरु ने वास्तविक साक्षात् दर्शन किये थे देवी-देवताओं के, इस्लाम की, Christianity की, साधनायें कीं, गोपी भाव लेकर, स्त्री रूप से साधना की, ज्ञान की पद्धति से तथा अन्य अनेकों प्रकार से की है। प्रभु ने उनमें इतनी शक्ति दे रखी थी कि तीन चार दिन की साधना के पश्चात् ही उनको उस धर्म के अनुसार प्रभु के दर्शन हो जाते थे। माँ दुर्गा के दर्शन – और उनसे साक्षात् वार्तालाप तो नित्य ही होता था।

हम सत्संगी भाई-बहनों को चाहिए कि हम भी

Scanned by CamScanner

जन्माष्टमी जैसे पवित्र त्योहारों के रहस्य को सही तौर पर समझें – फिर उन्हें सामाजिक परम्परा के अनुसार करने के साथ आध्यात्मिक प्रेरणा के साथ मनाना सीखें।

प्रसंगवश, हमारे पूज्य गुरुदेव की स्वयं अपने मुखारविंद से सुनायी गई एक विशेष बात बताऊँ – कि जब वे बालक थे तो सिकंदराबाद वाले घर में जहाँ मवेशी बंधते थे वहाँ एक भूसी की कोठरी थी। वे अकेले में वहाँ जाकर कृष्ण भगवान को याद किया करते थे और आपको भगवान के बालरूप के दर्शन हुआ करते थे।

आपको जन्माष्टमी पर्व की बधाई। ॐॐ

रामाश्रम सत्संग के अधिष्ठाता

परमपूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

द्वारा निर्देशित ईश्वर को पाने का निश्चित साधन

जिक्र खफी का जाप (दिल का जाप) किया करें।

जाजिब्रा, गैर आदमी और गैर रौहबत के नक्शों से दिल साफ करें।

परमात्मा शिवाय किसी तरफ तवज्जो न करें।

यकसूई (एकाग्रता) के साथ दिल को हाजिर रखने का पक्का इरादा करें।

सत् और मालिक की तरफ उन्सियत और लगाव हासिल करें।

अपने आप को भेट कर उसी में महब और लय हो जावें।

इसी काम को करने में अपने आप को बिठा दें।

असल पद पर पहुँचने का सबसे

ज्यादा नजदीकी रास्ता और

यकीनी जरिया है।

Scanned by CamScanner

व्यासपूजन पर्व पर

गुरु या प्रभु की सच्ची पूजा है : शिष्य का समर्पण-अनुपालन

संसार के देशों मे ऐसा कोई धर्म सम्प्रदाय नहीं जहां गुरु की महानता और महत्त्व के प्रति गुरु पूर्णिमा या व्यास पूजा जैसा सुन्दर पर्व मनाने की प्रथा हो हमारे यहां यह दिन जीवन के परम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पूज्यतम मार्गदर्शक अर्थात गुरु की विशेष पूजा का अवसर प्रदान करता है। गुरु तो अपने शिष्यों की हर प्रकार सेवा करने के कारण पूज्य और कृतज्ञता के अधिकारी सदैव ही होते हैं। परन्तु इस शुभ दिन प्रत्येक शिष्य साधक का विशेष प्रयास होता है कि वह अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा को अपने सद्गुरु के प्रति आभार-स्वरूप प्रकट करे। गुरु भी विशेष उदारतापूर्वक अपने प्रिय शिष्योंपर भगवत-प्रसादी की अमृत वर्षा करते हैं।

ये जो पुष्प या पुष्पहार भेंट किये जाते हैं इनमें वास्तव में साधक का अहंकार समर्पित होना चाहिए। दीक्षा के समय यों तो सभी साधक अपना तन-मन-धन गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर देने का वचन देते हैं, परन्तु वास्तव में हम स्वनिरीक्षण करके देखें कि हम उन्हें क्या दे पाते हैं। तन और धन की भेंट तो सच्चे सदगुरु चाहते ही नहीं। यदि शिष्यों की खुशी के लिए कुछ स्वीकार करते भी हैं तो वह नाममात्र ही

Scanned by CamScanner

लेते हैं। वह तो मन की अर्थात 'अहंभाव' की भेंट लेना चाहते हैं। जिससे उसका उद्धार हो जाये।

इसी प्रकार हम उनके प्रति सम्मान प्रगट करने के लिये उनका चरणस्पर्श भी करते हैं। गुरुवाणी का एक बड़ा सुन्दर भजन है। यदि जीवन का लक्ष्य प्राप्त करना है तो गुरु के चरणों को छुओ। गुरु के चरण केवल शरीर के चरण नहीं हैं। (लाभ इनसे भी होता है), किन्तु जो गुरुवाणी में संकेत है उसके अर्थ ये हैं कि उनके आत्मिक गुणों को अपने रोम–रोम में रमा लो, अपने भीतर में गुरु के सच्चे स्वरूप को बसा लो। जब तक उनके जो आत्मिक गुण हैं उनको अपनायेंगे नहीं और अपने अनात्मिक अवगुणों को त्यागेंगे नहीं, तब तक विशेष आध्यात्मिक प्रगति नहीं होगी।

गुरु जो कि ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरूप है – उसके चरणों में माथा टेकने का सही मतलब यही है कि सबसे पहले हम अपने अहंकार को, अपनी बुराईयों को उनके चरणां में अर्पण कर दें। उनकी सद्वचनों की प्रसादी लें, उनकी निर्मलता लें, उनके गुणों को अपनायें और वैसे ही हम हो जायें। वास्तव में वैसे तो हम हैं भी, पर अहंकार के कारण हम समझते है कि हम शरीर हैं, हम मन हैं, या बुद्धि है। कोई समझता है मेरी बुद्धि तीव्र है, मै तो अपनी बुद्धि के चातुर्य से दूसरों को प्रभावित कर लेता हूँ। ये मन की बातें रास्ते की रुकावट हैं, अहंकार को पोषित करती हैं।

अहंकार कम करने का सबसे सरल तरीका है दीनता

Scanned by CamScanner

अपनाना। दीनता है इस अहं भावना को छोड़ना, दीनता ये नहीं कि किसी को प्रभावित करने के लिये या उससे काम निकालने के लिए दो–चार मीठी–मीठी बातें कर लीं। ये सूक्ष्म अहंकार है। असली दीनता अपनाना और अहंकार त्यागना ये है कि आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं, जो आपे बंधन हैं – उनसे मुक्त होना, दीनता है। दीनता है अपने पृथक अस्तित्व का त्याग कर देना। अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला देना क्योंकि परमात्मा और हमारी जीवात्मा एक है।

आत्मा के ऊपर आवरण चढ़े हैं जिसके परिणामस्वरूप हम अपने वास्तविक स्वरूप को देख नहीं पाते हैं। साधना करने का मतलब यही है कि कोई भी पद्धति अपनायें–चाहे सत्संग में जायें, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में जायें, महापुरुषों की सेवा मं जायें अथवा धर्मग्रन्थ पढ़ें, उसका परिणाम होना चाहिए कि हमारी आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं इनसे इसी जीवन में मुक्त हो जायें। यही मुक्ति है। जिसको इन ग़िलाफ़ा (आवरणों) से मुक्ति जीते जी नहीं मिली, जिसने जीते जी अपने निर्वाण यानी जीवन मुक्त होने की अनुभूति नहीं की है, वे ये चाहें कि उनको शरीर छोड़ने के बाद मुक्ति मिल, जायेगी। सो यह तो संभव नहीं है – अपने आपको भ्रम में रखना है।

हमारी संस्कृति में गुरु पूर्णिमा की प्रथा का प्रारम्भ मुनि वेद व्यास जी ने किया था जबकि उन्होंने अपने ही

Scanned by CamScanner

किशोर पुत्र शुकदेव को अपना गुरु मानकर उसकी पूजा की थी – इसलिये इस पर्व को व्यास पूजा भी कहा जाता है। व्यास जी ने कई सौ वर्ष के आठ पीढ़ियों वाले जीवन में वेदों की महान ब्रह्मवाणी को ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के रूप मे व्यवस्थित करके समायोजित किया और पौराणिक ग्रन्थों की, शास्त्रों की रचना की जिनमें भागवतपुराण सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसी ग्रन्थ में महाभारत और उसमें गीता का भगवान कृष्ण का अर्जुण को दिया गया ज्ञान उपदेश सम्मिलित है।

कहा जाता है कि जब व्यासजी को भी अपना गुरु बनाने की आवश्यकता महसूस हुई तो बहुत से बुजुर्ग साथियों, मुनि–ऋषियों से परामर्श किया। उस समय उन लोगों ने अपने–अपने विचार में ऐसे योग्य अनेकों सत्यपुरुषो के नाम बताये। परन्तु सबमें कुछ–न–कुछ दोष या हीनता पाई गयी। अन्त में उन महापुरुषों ने ही इनके किशोरावस्था वाले सुपुत्र शुकदेव जी के नाम की सिफ़ारिश की जिसका आधार उनका ही अपना अनुभव था।

कहा जाता है कि एक दिन ये मुनिजन जिनमें व्यासजी भी थे कहीं से आ रहे थे तो मार्ग के निकट ही एक नदीं में कुछ महिलायें स्नाने करते हुए मिलीं। इनको दूर से देखते ही सबने झटपट डुबकी लगाई तो किसी ने वस्त्र ओढ़कर स्वयं को छिपा लिया। जब ये मुनि लोग आगे बढ़ गये तो फिर से स्वच्छन्द भाव से जल में क्रीड़ा करने लगीं। पीछे–पीछे किशोर

Scanned by CamScanner

शुकदेव भी वहीं से आते नज़र आये। परन्तु उनके पास से गुजरने पर भी उन्होंने कोई पर्दा नहीं किया। वैसे ही उन्मुक्त भाव से जल-क्रीड़ा करती रहीं।

दूर से ही यह व्यवहार देखकर व्योवृद्ध मुनियों से रहा न गया। उन्होंने लौटकर स्त्रियों के व्यावहार की प्रतिक्रिया की और अपने प्रति भेदभाव के बर्ताव का कारण पूछा। एक महिला ने बताया – "भगवन्, क्षमा करें, आप बड़े बूढों में तो अभी तक स्त्री-पुरुष और मान-अपमान का भाव मौजूद है, सो पर्दा किया था। परन्तु युवा षुकदेव तो पूर्णतः इन्द्रियजित योगी है। सबमें ब्रह्मरूप देखने के अभेद स्वभाव वाला स्थितप्रज्ञ ज्ञानी है। अतएव, उससे कैसा पर्दा।"

और इसी कारण व्यास जी ने भी षुकदेव की गुरु के रूप में स्तुति और अर्चना की। शुकदेव को उच्चासन पर विठाकर पुष्पांजलि दी, पूजा की। तभी से यह गुरु-पूजा का पर्व चला आ रहा है। इसकी मुख्य भावना – अर्थात ईश्वरीय गुणों के साकार स्वरूप गुरु की वंदना को समझना है। गुरु की वन्दना है उनके गुणों का स्तुति-गान करना और अनुसरण करना तथा निरन्तर प्रयास द्वारा धीरे-धीरे अपने दुगुर्णो को त्यागकर सद्गुणों को धारण करना।

हमारे जीवन को हर समय प्रभावित करने वाले दो शब्द है : स्तुति और निन्दा। स्तुति करनी है तो परमपिता परमात्मा की करो, उसके एक प्रकट स्वरूप संत सद्गुरु की करो और निन्दा करनी है तो अपने आपकी करो। दैनिक

Scanned by CamScanner

व्यवहार में अपने विचारों को देखिये। हम प्रतिक्षण दूसरों की निन्दा करते रहते हैं। ऐसा व्यक्ति यदि चाहे कि वो परमार्थ में सफल हो जाये, तो ये अपने आपको धोखा देना है। सत्संग में भी भाई आते हैं, कहते हैं हमें 20–25 साल हो गये पर अब तक हमें प्राप्ति क्या हुई? इसी प्रकार का एक भाई का पत्र मिला। मैंने उनसे पूछा तुमने 25 साल में क्या सद्गुण सीखे हैं और दौष कौन सा छोड़ा है। और वह मौन.....।

इसलिये पूज्य गुरुदेव कहते रहे हैं कि स्तुति करनी है तो परमपिता परमात्मा की करो। यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाये, कोई सच्चा हितैषी मिल जाये तो उससे संबंध स्थापित कर लो। और यदि निन्दा करनी है तो अपने अवगुणों की करो। अपना स्वनिरीक्षण (Introspection) करो। हम दूसरों के दोष देखते हैं अपना दोष कोई नहीं देखता। ये प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव है। हमारे यहॉ की साधना की विशेष बात यही है कि अपनी स्वयं की दशा का निष्पक्ष निरीक्षण करें, अपने दोष देखें और उनका त्याग करें।

सन्यासी को सन्यास की दीक्षा तब दी जाती है जब उसके सिर के सारे बाल मूंड दिये जाते हैं, एक बाल भी रहने नहीं दिया जाता। अर्थात जब उसमें एक भी दोष नहीं रह जाता वो अग्नि स्वरूप हो जाता है। तब अग्नि रूप गेरुवे वस्त्र उसको पहना दिये जाते हैं, उससे पहले यह अधिकार किसी को नहीं है। हमारे शास्त्रों के अनुसार सन्यास की दीक्षा जब तक भीतर में से अवगुणों का विनाश नहीं हो जाता

Scanned by CamScanner

उससे पहले नहीं दी जाती। परन्तु अब तो कोई भी व्यक्ति गेरुए कपड़े पहनकर अपने आप ही सन्यासी बन जाता है। ये समय का दोष है, पद्धति का नहीं।

इसी तरह हम भी सत्संग में आकर सत्संगी तो कहलाते हैं परन्तु गुरु महाराज की बातों का अनुसरण तो दूर की बात है, मनन भी गम्भीरता से नहीं करते हैं। षिष्यों को यदि गुरु में पूरी आस्था न हो तो उनकी संगति न करें। पर जिस धर्मगुरु पर विश्वास है उसके अनुसार चलिये। उसके अनुसार चलना ही उस महापुरुष के चरणों में पुष्प चढ़ाना है। अपने शीश को रखना है। हम चरण छूकर शरण में होने का बाहरी दिखावा करते हैं। इससे बेहतर है कि ऐसा दिखावा न करें।

गुरुनानक देव ने दो शब्दों में बता दिया है कि स्तुति करने का क्या मतलब है –

'तू तू करता तू भया, मुझ में रही ना हूँ।
आपा फिरका मिट गया, जत देखूं तत तूँ।।

गुरु या ईश्वर की स्तुति करने का मतलब है 'तू तू करूँ' अर्थात कोई सा नाम भी लूँ– राम कहूँ, रहीम कहूं, सतनाम कहूँ एक ही बात है। उसका हर समय इतना सुमिरन और गुणगान करूँ, उसको हर समय हर एक में देखूं कि हर पल ऐसा करते–करते स्वयं को यानी अपनी हूँ या अहं को भी भूल जाऊं।

संत कबीर का जीवन कितना सीधा–सादा था। माँ कहा

Scanned by CamScanner

करती – 'इसने तो सब काम–काज छोड़ दिया।' माता–पिता जिन्होंने अनाथ कबीर साहब को अपनाया था वे जुलाहे थे अतः जुलाहे का ही काम उनको सिखाया। जब ये अपनी (प्रभु प्रेम की) मस्ती में आते थे तो सब कुछ छोड़ देते थे – सुई कहां है, धागा कहां है, – किसी की सुधि न रहतीं। मॉ को बड़ा कष्ट होता था कि ये काम नहीं करेगा तो आगे चलकर हमारे बाद गुज़ारा कैसे करेगा। तो मॉ के विचारों का कबीर साहब उत्तर भी दे रहे हैं कि – "मुझे करने की क्या ज़रूरत है ? मेरा सच्चा पिता, वो राम ही मेरी देखभाल करेगा। मुझे क्या चिन्ता है।" यह है विश्वास, ईश्वर के प्रति अटल, पूर्ण विश्वास। हम भी रोज़ पाठ–पूजा करते है पर क्या हमारे भीतर में इतना विश्वास है?

शंकराचार्य जी भी कहते हैं 'तत्वमसि' – तुम तो वही हो (जो कि 'वह' है) गुरु की शरण लेकर यही बात सीखनी है कि उनके गुणों को सराहें, फिर उनके रूप को अपनायें। साधना यही करनी है कि इसी जीवन में अपने सच्चे स्वरूप को, अपने आपको पहचानें। पहचान कर वैसा ही बन जाये। संक्षेप में बात यही है कि स्तुति करनी है तो प्रभु की करो, अपने गुरु की – इष्ट की या महापुरुषों की करो। सच्चा साधक तो किसी की निन्दा या प्रतिक्रिया नहीं करता है। उसके लिये सभी एक समान हैं, क्योंकि सभी में तो परमात्मा के विविध रूप समाए हुए हैं।

कई महापुरुष तो यहॉ तक कहते हैं कि दुश्मन में भी

Scanned by CamScanner

परमात्मा के दर्शन होने चाहिये। हजरत ईसा को जॉन ने फॉसी पर चढवाया है। हज़रत ईसा ने फॉसी पर चढ़ते हुए भी प्रभु से प्रार्थना की थी कि – "हे प्रभु इन लोगों का दोष नहीं है, ये अज्ञानी हैं। यह नहीं समझते कि ये क्या कर रहे हैं। परमात्मा, इनको माफ़ कर दो, हे दयालु माफ़ी दे दो।" तीसरे दिन पुनर्जन्म के बाद जॉन से जब भेंट हुई तो वह घबरा गया है। हज़रत ईसा ने उसका आलिंगन करके कहा – "भाई डरों नहीं मैं वही हूँ, मैं भूत नहीं हूँ। मैं तो आत्मा हूँ, वो आत्मा जो तेरे भीतर में भी है तू मेरा ही तो रूप है, मैं तेरा रूप हूँ।" और इस प्रकार वो दुश्मन जिसने उन्हें फॉसी पर चढ़ाया उसका वो प्रेम से आलिंगन कर रहे हैं। उस तरह प्रभु का रूप बनना – ये है चरणों को छूने का अर्थ!

संत रविदास ने कहा है कि *'हर कीरत हमरी रैदास"* गुरुनानक भी कहते हैं कि मेरी जायदाद भला क्या है? मेरी सम्पति क्या है ? मैने कोई महल नहीं बनाये, मैंने कोई बगीचे नहीं बनाये। जो कुछ मेरे पास था भी, सब छोड़ दिया, तो मेरी सम्पति क्या है? *"हरकीरत हमरे रैदास"* प्रभु के गुणों का गुणगान करना, उसका कीर्तन करके, हर वक़्त उसका सुमिरन करना। सारा जीवन भर संत रविदास प्रभु का गुणगान करते रहे। कभी मन में करते । कभी–कभी आत्मा में इतने विभोर हो जाते कि कई कई दिन तक आत्म–समाधि में ही लीन रहे।

हम भी स्तुतिगान करें – ईश्वर का, ईश्वर के प्रकट रूप का गुणगान खूब करें पर इसके साथ–साथ अपने

Scanned by CamScanner

अवगुणों को भी देखते चलें। पूज्य लालाजी महाराज का कथन था कि – दो रास्ते हैं एक ज्ञान का, दूसरा प्रेम साधना का। एक बड़ी सुन्दर मिसाल दिया करते थे– दो चांदरे बिछी हैं कॉटों पर। एक रास्ता यह है कि अपने ग़लत आचरण अर्थात अवगुणों की सारी चादर को एक झटके से तुरंत ही उठा दें। वो रास्ता है ज्ञान का जो कि सबके लिए सरल नहीं है। दूसरा रास्ता है कि चादर में से कॉटों को एक–एक करके धीरे–धीरे निकालते जायें।

यह तरीका है भक्तों का जिसमें स्तुति करते हुए धीरे–धीरे अपनी ज़िन्दगी से अहंकार, दोषदर्शन, आलोचना और प्रतिक्रिया जैसे अवगुणों के कॉटे निकाल फेंकें और आत्मा की 'चदरिया' को साफ कर लें।

सच्चा गुरुपूजन यही है कि साधक की स्थिति जो ऐसी थी कि *"मैली चादर ओढ़के कैसे पास तुम्हारे आऊँ?"* वह इतनी निर्मल हो जाये कि अंत समय जब आये तो वह भी ऐसा कुछ कहने योग्य हो जाये कि –

'दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों कि त्यो धर दीनी चदरिया।'

इस शुभदिन हमें स्वयं ऐसी गुरुपूजा करनी चाहिए – केवल औपचारिकता पूरी करने के लिए नहीं कि हम गुरुदेव की कृपा को पाने के अधिकारी बनें। गुरु पूर्णिमा पर्व मनाने का पूरा और सच्चा लाभ उठा सकें। गुरु महाराज की दया आप सबको प्राप्त होती रहे – यही मेरी शुभकामना है।

गुरुदेव हमें शक्ति प्रदान करें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

कबीर जयंती पर

संत प्रवर की वाणी में
दीनता का अंग

कबीर साहब ने अपनी बानी में फरमाया है कि *'तरने को दीनता और बूड़न को अभिमान काफी है।'* अर्थात इस भवसागर से तरने के लिए दीनता आनी चाहिए और इसी भवसागर के दल-दल में फंसाये रखने के लिए अभिमान हमारा शत्रु है। सच्ची दीनता अपनायें, अपने आपको कुछ नहीं समझें। उन्हीं के शब्दों में –

कबीर सबसे हम बुरे, हमसे बुरा न कोय?
जो ऐसा कर बूझिया, मीत हमारा सोय।।

कबीर साहब हमारा प्रतीक बनकर स्वयं से कहते हैं कि हम सब से बुरे हैं और हमारे अतिरिक्त *'हम तज और भलो सब कोय।'* इतना महान संत अपने आपको कह रहा है कि मेरे को छोड़कर संसार जितना है वो सब भला है, मेरे जैसा बुरा कोई नहीं है। और हमें जरा सी कोई प्रतिकूल बात कह देता है तो आपे से बाहर हो जाते हैं – कौन होता है यह ऐसी बातें कहने वाला? किसको यह पीड़ा होती है, किसको घाव लगता है? अहंकार को, मैं और मेरापन को। कबीर साहब में मैं और मेरापन नहीं है। वो तो आत्म-स्थिति पर खड़े होकर कह रहे हैं – *हम तज और भलो सब कोय।*

Scanned by CamScanner

कबीर साहब तो परमात्मा के दर्शन कण–कण में करते हैं। वो परमात्मा को देख रहे हैं, प्रत्येक रूप में जब परमात्मा सर्वव्यापक है, सब में विराजमान है, तो कोई व्यक्ति बुरा या भला कैसे हो सकता है, सभी में तो परमात्मा है। यह बुराई भलाई कौन उत्पन्न करता है? द्वन्द्व, द्वेष ईर्ष्या आदि कौन उत्पन्न करता है? यह संसार में आपस में झगड़े कौन उत्पन्न करता है। यह अहंकार ही है जिसको चोट लगती है। मन बुराई व भलाई दोनों में फंस जाता है। राग और द्वेष दोनों में यह मन फंस जाता है। कबीर साहब इसीलिये कहते हैं कि जब कण–कण में वो परमात्मा व्यापक है तो कौन बुरा है कौन भला है – *'ना कोई बैरी नाहिं बेगाना।'* कोई दुश्मन तो है ही नहीं, कोई बेगाना तो है ही नहीं। सभी तो हमारे अपने हैं। अपने के अर्थ हैं कि जो आत्मा मेरे में हैं वही आत्मा उसमें भी है। इसलिये कहीं भिन्नता है ही नहीं। जहां एकता है आत्मा की, वहां बैरी या बेगाना, अपने और पराये, शत्रु या मित्र किसके?

कबीर साहब कहते हैं – *'जिन ऐसा कर बूझिया मीत हमारा सोई।'* जिस व्यक्ति ने ऐसा विश्वास कर लिया कि सब में हीं परमात्मा है वही हमारा मित्र है। गुरुदेव फरमाते हैं कि जिसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया, सच्चा प्रेम अर्थात आत्मिक प्रेम उत्पन्न हो गया, उसी में सच्ची दीनता उत्पन्न हो सकती है। कबीर साहब जैसे संत ही ऐसे शब्द कह सकते हैं *'हम से और भलो सब कोय।'*

क्या हमने स्वयं को कभी ऐसा कहा है ? हम तो

Scanned by CamScanner

अपने आपको कहते हैं – हम बहुत अच्छे हैं, बाकी दुनिया हमसे हीन है। कोई ऐसा व्यक्ति है जो अपने आप से कहता है कि नहीं साहब मैं आपसे छोटा हूँ। सब ही अपने आप को चतुर, बुद्धिजीवी, ज़्यादा तर्क करने वाला मानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है। वो जो दीनता उसके हृदय में होती है या जो व्यवहार में प्रकट होती है, वह सच्ची दीनता नहीं, बनावटी होती है। सच्ची दीनता तो केवल प्रेम में है, आत्मा में है।

हज़रत ईसा भी ऐसा ही कहते हैं। जैसे हमारे यहाँ यम नियम हैं, उसी प्रकार उनके यहाँ हज़रत मूसा ने दस नियम (Ten Commandments) बनाये थे परन्तु हज़रत ईसा ने केवल दो नियमों को महत्त्व दिया, एक यह कि परमात्मा को प्यार करो (Love God) जैसे मृग मरुस्थल में जल खोजने के लिये व्याकुल होता है उसी प्रकार जिज्ञासु को परमात्मा की खोज में अपने आपको खो देना चाहिए। दूसरा, अपने पड़ोसी के साथ उस तरह का प्रेम करो जिस तरह का अपने साथ करना चाहते हो। (Love thy neighbour as thyself) पड़ोसी के अर्थ यह है कि संसार में सभी के साथ प्रेम करो, चाहे वे आपसे घृणा करते हैं या आपसे स्नेह करते हैं। आप एक जैसा प्रेम करो। कोई आपको ईट मारता है, कोई आपसे शत्रुता करता है तो भी आप उससे मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक कर्मो की ओर ध्यान न देते हुए उसकी आत्मा को देखते हुये उसके साथ प्रेम करो। हज़रत ईसा ने तो यहां तक कहा है कि "यदि आप पूजा के स्थान पर कोई उपहार लायें हों और आपके मन में किसी के प्रति तनिक भी द्वेष की भावना है तो आप

Scanned by CamScanner

इसका फल यह होगा कि उसकी हर समय की प्रतिक्रिया से हमारे द्वेष, विषेषकर अभिमान में कमी होती जायेगी और खुषी-खुषी आगे इसी दीनता के भाव को पुष्ट करने के लिये यह भी कहते हैं कि -

निदंक मेरे भाई-बाप जनम-जनम के काटे पाप।

तथा

कहै कबीर निदंक बलिहारी,
आप रहै जन पार उतारी।

अपने उपदेष में कबीर साहब अहं या गर्व के बारे में चेतावनी देकर समझाते हैं कि -

या दुनियां में आइकै, छेड़ि देई तू ऐंठ।
लेना नाम सो लेई लै, उठी जात है पैंठ।।

उन्होंने तो अपना जीवन निर्वाह केवल सूत काटकर किया, जब कि जहांगष्त और धर्मदास जेसे अति धनी-मानी लोग उनके अति प्रिय षिष्य रहे। उनकी सादगी और दीनभावना तो यह थी कि -

उदर समाता जन्म लै, तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करैं, ता का नाम फ़कीर।।

गुरु ग्रंथ साहब को तैयार करते समय गुरु अमरदास जी और अर्जुनदेव जी ने गुरु नानकदेव जी की बानी के साथ ही सूफ़ी फ़कीर फरीद जी और रैदासजी आदि अनेकों संत भक्तों की रचनाएं संग्रह की हैं। उनमें कबीर जी की बानी का विषेष स्थान है। यहां केवल उनकी दीनता का अंग ही संक्षेप में बता रहा हूं।

अहं से मुक्त होना हमारे यहॉ का भी तप है। पूज्य लालाजी महाराज के पवित्र शब्दों में "औरों के यहॉ तप हो सकता है कि धूप में बैठकर, अग्नि जलाकर, हठयोग की

Scanned by CamScanner

क्रियाएँ अपना कर तप करें। परन्तु हमारे यहाँ का तप यह है कि अपने मन को ढीला करें, अपने अहंकार को काबू में करें। लोग-बाग हमें लानते दें, हमारी निंदा करें, अपमान करें तो भी हम खुषी-खुषी सहन करें।" पर यह बड़ा कठिन है।

पंजाब के सूफ़ी संत बाबा फ़रीद कहते हैं कि 'यदि कोई तुझे मुक्की मारे तो तू उँगली से भी मत छूना। और जो तुझको दुःख देते हैं या विरोध करते हैं उनके घर जाकर *'पैर तिनाँ के चुम्म।'* आप कहेंगे यह कैसी विचित्र लीला है एक आदमी है कि हमें दुख दे व हम उसके घर जाकर उसके पाँव पकड़ें, उसके पाँव को चूमे? संत-सूफ़ियों के मतानुसार जो ऐसी साधना कर सकता है, वही दीनता के भाव को समझ सकता है।

कबीर साहब का बारम्बार फ़रमाना है कि सच्ची दीनता यही है कि *'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा* यह शरीर भी मेरा नहीं, मन भी मेरा नहीं, धन भी मेरा नहीं। ये जितने संबंधी वगैरह हैं ये मेरे नहीं। कबीर साहब के उपदेश के अनुसार किसी से कोई लगाव नहीं कोई आसक्ति नहीं। बल्कि *'जो कुछ है सो तेरा।'* जिज्ञासु को अनासक्त होना होगा। पर हमारा शरीर, हमारा मन और बुद्धि की चतुराई बाधा डालती है। जब हम यह मान लेते हैं कि *'तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर'* और अलहदा हो गये तो कौन अलहदा होगा? .....आत्मा।

अहंकार ख़त्म हो गया तो आत्मा व्यवहार करती है। आत्मा में दीनता है, आत्मा में प्रेम है, आत्मा में आनंद है,

Scanned by CamScanner

जीवन है, चेतना है। आत्मा में न जरा है, न रोग है, न मरण। यदि ऐसा सफल जीवन चाहिये तो सच्ची दीनता को अपनायें। साधना इसके लिए यही है कि मन को, जो अहंकार से जकड़ा हुआ है इसको वहाँ से निकाल कर प्रभु की या गुरु के चरणों की रज बन जायें। अपने आप को पूर्णरूप से मिटा दें, ख़ाक बन जायें। तब जाकर दीनता की स्थिति की अनुभूति हो सकेगी।

अभ्यास के लिये, हर समय अपने मन की जांच करते रहना चाहिए। हमारे मन में बदले की भावना है, ईर्ष्या है। हर वक्त जलन रहती है तो ईश्वर तो बहुत दूर है। साधना का मतलब यही है कि स्वनिरीक्षण करते हुये, अपने अवगुणों को देखते हुए उनका त्याग करें। व्रत रखने का भाव यही है, तीर्थो पर जाने का भाव यहीं है। पहले भी लोग करते थे अब भी करते हैं। किसी चीज़ पर मन आसक्त होता था तो उसे छोड़कर आते थे परन्तु वो प्रथा बिगड़ते-बिगड़ते ऐसी हो गयी कि जो चीज़ अच्छी नहीं लगती उसे छोड़ आते हैं। गंगाजी पर या तीर्थो पर जाकर महापुरुषों के दर्शन करने चाहिए। वो कहते हैं – आये हो गंगास्नान करने तो बाहर का स्नान करते हुए भीतर की भी सफ़ाई करो।

तीर्थ जाने का सच्चा लाभ तो ऐसे संत-महात्माओं के सत्संग करने और उनके उपदेष की प्रसादी लेकर आने में है। महात्मा कबीर की बानी के बहुत सारे अंग हैं, यहाँ केवल अहं को त्यागकर दीनता अपनाने का विषय लिया है।

गुरुदेव आपको इस भयंकर अवगुण-अहंकार से छुटकारा पाने की षक्ति दें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

गुरुगोविंद जयंती पर

अद्वितीय बलिदान एवं जाति-समाज के उद्धार की गाथा

गुरु गोबिन्दसिंह जी के जीवन की एक अति महत्त्वपूर्ण घटना के बारे में ही उनका एक प्रसिद्ध षबद है :-

"जुदध जिते इनहीं के प्रसाद, इन ही के प्रसाद सु दान करे
अध अउध टरे इनहीं के प्रसाद, इन ही की कृपा पुन्न धान भरे।
इन हीं के प्रसाद सु विदिया लई, इनहीं की कृपा सब षतरु मरे,
इन ही की कृपा से सजे हम हैं, नहिं मो सो गरीब करोर परे।"

इनहीं की कृपा से सजे हम हैं, नहिं मो सो गरीब करोर परे - गुरु गोबिन्द सिंह जी की इन प्रसिद्ध पंक्तियों का क्या अर्थ है - यह जानने के लिए हमें इतिहास देखना होगा। 17वी सदी में दुर्भाग्य से देश में बहुत अशान्ति के दिन थे। उस समय औरंगज़ेब का क्रूर राज्य था जिसमें हिन्दुओं से (जज़िया) टैक्स लिया जाता था अन्यथा उन्हें धर्म परिवर्तन करना पड़ता या वध कर दिया जाता था। हमारा इतिहास दिखा रहा है कि काफ़ी दिनों से बाहर उत्तर से आक्रमणकारी आते रहे और हमें लूटते रहे। हमारी बहनों और लड़कियों को उठा ले जाते। उन कारणों का वर्णन इस वक्त आवश्यक नहीं।

उन्हीं दिनों के वरिष्ठ माननीय ग्रहस्थ संत गुरु तेगबहादुर जी की सौ साल की आयु में पटना में गुरु गोविन्द

Scanned by CamScanner

सिंह का जन्म सन् 1666 में हुआ। उन्होंने अपनी जीवन कथा में लिखा है कि जब उन्होंने हिमालय पर्वत में तपस्या की थी तो ईश्वरीय वाणी ने आदेश दिया था कि 'जाओ भारतवर्ष में इस वक्त जनजीवन का उद्धार करो' इसी के विषय में उन्होंने यह पद लिखा था :–

मैं हूं परम पुरख को दासा।
देखन आयो जगत तमासा।।"

गुरु तेगबहादुर के पास कश्मीरी पंडित आये हैं। औरंगजेब़ ने उनके साथ अत्याचार किये हैं। वे आये हैं और कहते हैं औरंगज़ेब उनका या किसी महान हस्ती का बलिदान चाहता है। वृद्ध गुरुजी नौ साल के बालक से पूछते हैं, "पुत्तर तुम्हारा क्या विचार है?..." क्योंकि वे जानते थे कि बालक क्या है। बालक गोबिन्द राय कहता है – "इस समय देश में आपसे बड़ा महापुरुष और कौन हो सकता है। इन पंडितों को बचाने के लिए आप बादशाद औरंगज़ेब से बात करें फिर आवश्यक हो तो बलिदान दें।"

आपके पिताजी दिल्ली गये हैं और धर्म छोड़ने की बात न मानने पर, औरंगज़ेब के हुक्म से दिल्ली के चांदनी चौक में जहॉ शीश महल गुरुद्वारा बना हुआ है, उसी स्थान पर अपने षीष का बलिदान दिया है। इसके बाद सुपुत्र गोविन्द राय ने 13 वर्ष की आयु में गद्दी का बोझ संभाला। उन्हीं दिनों एक समागम में हजारों की संख्या में श्रद्धालु संगत जमा हुई। आपने वहॉ तलवार निकालकर एकत्रित व्यक्तियों से कहा, 'मुझे पॉच व्यक्तियों के सिर चाहिए।" सारी संगत मौन हो गयी।

वह बाल गुरु ललकार रहा है – "मुझे पॉच सिर चाहिए! कौन है सेवक जो अपना सिर दे सकता है। वह आगे

Scanned by CamScanner

आये।" सारे सत्संग समूह में हलचल मच गयी। गुरुजी अभी बच्चे थे। उनकी माताजी के पास संगत गयी और माता जी से प्रार्थना की कि – "माताजी, गुरु अभी बच्चा है, ऐसा करना संगत के लिए अच्छा नहीं रहेगा। कृपया आप ही उन्हें समझाइए।"

माता ने सुपुत्र को बुलाया और कहा, "यह क्या बाल लीला कर रहे हो, छोड़ो इस बात को।" परन्तु वो तो ईश्वर ऐसा कहने वाले ईश्वर के आज्ञाकारी सेवक थे। ईश्वर की आज्ञा से आये थे। – अपने कहे उपरोक्त शब्दों के अनुसार – "मै हूँ परम पुरुख को दासा...। देश में जो अत्याचार हो रहे थे उनसे जनता को बचाने के लिए परमात्मा ने भेजा था। माँ से कहते हैं, "माँ आप शान्त रहिये। आपका काम रसोई का है। आप लंगर तैयार करें। आप देखती जाइए। बाद में मेरी गलती हो तो कहना।" धीरे–धीरे सारी संगत भागने लगी। कौन देता है अपना सिर। हम भी तो अपना सिर देते हैं' गुरु दीक्षा लेते समय तन, मन और धन सब कुछ गुरु को देने का वचन देते हैं। उस समय तो कह देते हैं फिर हम भूल जाते हैं। यह नई बात नहीं है। उपस्थित संगत ने भी अपना सिर छिपाया और इधर–उधर हो लिये।

केवल एक व्यक्ति सामने बढ़कर आया। उसे वे तम्बू में ले गये। जैसे भी किया हो। कुछ देर बाद रक्त से रंजित तलवार हाथ में लेकर तम्बू से बाहर आये हैं और संगत को बोले, " मुझे चार व्यक्तियों की और आवश्यकता है।" धीरे–धीरे चार व्यक्ति और भी आ गये। ये पाँचों व्यक्ति (पंच प्यारे) आदर्श व्यक्ति थे। ये चार जातियों के और विभिन्न प्रदेशों के व्यक्ति थे। उन पाँचों को भीतर ले गये फिर उन्हें जीवित ही बाहर ले आये हैं। उपस्थित लोगों को यह देखकर

Scanned by CamScanner

आश्चर्य हुआ, पछतावा भी हुआ कि काश! उन्होंने भी क्यों न अपना सिर बलि के लिए दिया।

गुरुजी ने संबोधन करके कहा, " अब आपकी दीक्षा होगी" और पॉचों को नाम दान दिया है। इसे अमृत कहते हैं। दीक्षा देते वक्त बताशे लिए जाते हैं। एक त्रिखंड होता है। यह लोहे का होता है। बताशे को इसमें लाए जल में डाला जाता है। एक डेढ़ घंटे के करीब पूज्य गुरुओं की वाणी का पाठ किया जाता है। फिर लोहे के त्रिखंड के बताशे घुले हुए जल में गुरु अपनी आध्यात्मिक शक्ति डालकर अमृत बनाता है और शक्ति प्रदान करता है। अमृत का मतलब है आत्मा, जो हमारे मन को शुद्ध कर देती है। इस प्रकार शिष्य भी निर्मल पवित्र और आत्मिक षक्तिवाला हो जाता है।

बाल गुरु गोविन्द सिंह ने एक बरतन में पॉचों को जो अमृत दिया है (पंजाबी में उसे वांटा कहते हैं) वही एक को पिलाया। उसका झूठन दूसरे को पिलाया, उसका झूठन तीसरे को, जिसका चौथे और अंत में पॉचवे को पिलाया। ऐसा इसलिये किया ताकि चारो जातियों में भेद न रहें। एक रहें। पॉचों को अमृत पिलाकर एक कर दिया ताकि जातिवाद और ऊँच–नीच का भेदभाव न रहे और उस शक्तिपात से पॉचों का उद्धार किया। पॉचों को दीक्षा देकर अपना रूप दे दिया। यह दीक्षा का तरीका है। और यह तरीका चंद व्यक्तियो पर ही प्रयोग करते हैं। सबके साथ नहीं करते क्योंकि संख्या बहुत होती है। हॉ, सेवा सबकी करते हैं – सत्संग से, प्रेम से और प्रवचन से।

यह वास्तव में 'नाम' देने का, 'अमृत' देने का, तरीका है जिसे आपने पुनः जीवित किया। देश भूल चुका था। जातिवाद फैला हुआ था उस स्थिति में उन पॉचों को एक

Scanned by CamScanner

बना दिया। एक पिता का पुत्र बना दिया। 'एकस के हम सारे बालक।' उनको यह समझा दिया कि हम सब एक ही पिता की, एक सी संतान है, हम सब भाई--भाई हैं। यह सामाजिक एकता का अद्भुत प्रयास था।

पिछले दिनों भी मैंने अपने जीवन में देखा है जब कोई माताएं बहने मुसलमानों के यहाँ से आती थी तो स्नान करती थी। मैंने अपनी माता जी को ऐसा करते देखा। उस समय भी छूत--छात बहुत थी। पंजाब में उतनी नही थी, जितनी उत्तर भारत, बंगाल और बिहार मे या मध्य भारत में - विशेषकर दक्षिण में बडी छुआ--छूत थी। वहाँ तो छाया भी पड़ जाती तो स्नान करते थे। ऊँच--नीच, छूआछूत और जातिवाद बहुत ही फैला हुआ था।

जब पाँचों व्यक्तियों मे आत्मानुभूति हुई तो वो गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। उन पाँचों को गुरुजी ने कहा, "मुझे भी आपसे कुछ मांगना है, कुछ कहना है।" उन्होंने गुरुदेव से निर्देश करने को कहा। गुरुजी ने कहा "जब आप पाँचों जन भी मुझे भी दीक्षा दें। मुझे अपना शिष्य बना लें। आप मेरे गुरु हुए। आप अपनी अमृत प्रसादी मुझे प्रदान करें।" वे पाँचों चकित हुए फिर ये कहकर रोने लगे कि 'हे गुरुदेव ये आप क्या कह रहे है ?" और प्रेमाश्रु बहने लगे। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। अंतत: वे पाँचों भी उनकी बात मान गये। जैसे गुरु ने दीक्षा दी थी उसी प्रकार इन्होंने भी अपने गुरु को दीक्षा दी है।

उसी घटना को लेकर उपरोक्त भजन की पंक्तियों मे ये शब्द कह गये है - *इन्हीं की कृपा से सजे हम हैं।* हम सच्चे पुरुष बने है। संसार तो रो रहा हैं। सब माया में फँसे हुए है, उन्हें होश नहीं है। औरंगजेब के डर से लोग घरों में

Scanned by CamScanner

छिपकर बैठे रहते हैं। बादशाद औरंगज़ेब इतना अत्याचारी था कि उसने अपने बाप शाहजहां को करागार में डाल दिया था और भाई दारा को मरवा दिया था। कई संतों और फ़कीरों का बध भी करवा चुका था – केवल धर्म का ग़लत अर्थ समझने के कारण।

हिन्दुओं पर तो निरन्तर बहुत अत्याचार कर रहा था, खासकर काश्मीर के पंडितों और औरतों तथा विद्वानों पर। विचित्र बात यह थी कि उसमें कुछ गुण भी थे। वह अपनी कमाई स्वयं करता था। हाथ से कुरान शरीफ की आयतें लिखता था। उन्हें बेचकर गुज़ारा करता था। परन्तु उसमें ध ार्मिक कट्टरता बहुत थी, अतः उसने धर्म का सही अर्थ समझा ही नही। इसका मतलब यह नहीं कि इस्लाम में कोई बुराई है। लेकिन उसके समझने वाले व्यक्ति सब नहीं हैं।

जब काश्मीरी पंडित जिनकी विद्वता सब लोग मानते थे, उन्हें बचाने के लिए गुरु तेगबहादुर ने अपनी शहीदी दी थी, तब गुरुदेव ने ललकार कर कहा था कि अब देश लड़ेगा। उनसे पहले संत गुरुओं ने लड़ाई नहीं की थी, उन्होंने अत्याचार सहन किये परन्तु तलवार नहीं उठायी। इन दसवें सिख गुरु ने ही चंडी दी वार' नामक प्रसिद्ध रचना करके शक्ति मॉ दुर्गा की स्तुति करी थी। उसी पवित्र वाणी के शबदों में वर्णन है कि किस तरह तेरह साल की आयु में गुरु गोविन्द सिंह ने पंच ककार यानी केश, कंघी, कड़ा, किरपाण और कच्छा को धारण करने वाली रणवीर वेषधारी योद्धा शिष्यों की सेना तैयार की है और औरंगज़ेब को ललकारा और उससे लड़ाई की।

पिताजी के इस बलिदान के पश्चात गुरु गोविन्द जी ने अपने दो बच्चों को दीवार में चुने जाते देखा था और दो बच्चों

Scanned by CamScanner

को तलवार देकर मुसलमानों से लड़वाया था ताकि हिन्दुस्तान के लोग जागें। देशप्रेम और समाज सेवा के उद्देश्य से पिता का बलिदान दिया, बच्चों का बलिदान दिया। खेद है कि इतने असधारण बलिदानों के बावजूद हमारे देश में जितनी एकता होनी चाहिए थी उतनी नहीं हुई, और अभी भी नहीं है। आपस में फूट हमारे देश का दुर्भाग्य रहा है और अभी तक जारी दिखाई देता है।

जब गुरु गोविन्द सिंह जी ने युद्ध की ललकार दी थी तो भी हिमाचल प्रदेश के राजा–रजवाड़े और बहुत से ज़मींदार, जो छोटी–छोटी जातियों पर राज्य करते थे, उन्होंन भी गुरु गोविन्द सिंह का साथ नहीं दिया।

यह घटना मध्य प्रदेश में आनंदपुर में हुई। वहाँ के लोगों ने गुरुदेव को मध्य प्रदेश छोड़ने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने कहा नहीं तो यहाँ भी कोई बहुत बुरी दुर्घटना हो जायेगी। हिन्दुओं ने ही कहा, यहाँ से निकल जाओ। अंत में गुरु जी ने मध्य प्रदेश छोड़ दिया।

अपने लोगों ने उनकी जान नहीं बचायी, लेकिन कुछ मुसलमानों ने उनकी जान बचायी थी। उनको मुसलमानों के कपडे पहना दिये हैं ताकि रास्त में कोई न पहचाने। उनको (गुरुजी को) अपना पीर बताकर खाट पर बिठाया और वहाँ से निकाला है। लोगों से कहा कि ये अमृतसर की तहसील ऊँच के एक फकीर हैं। सब मुसलमान बुरे या अत्याचारी होते हैं यह धारणा गलत है। मुसलमानों में भी बहुत अच्छे से अच्छे लोग हुए है और अभी भी हैं।

आदिकाल से हम देख रहे हैं और आज भी हम एक नहीं हैं। चाहे जयचंद, पृथ्वीराज या राजस्थान के राजपूत राजा हों चाहे मगध कौशल के, उनमें कभी एकता नहीं रही और

Scanned by CamScanner

इसीलिए मुसलमानों का राज्य आया। शिवाजी का साथ भी देश के कम लोगों ने ही दिया। जयचंद पृथ्वीराज के अतिरिक्त और भी राजाओं तथा दूसरे प्रान्तों में परस्पर वैर विरोधी ने क्या किया। यही हमारी देशव्यापी कमज़ोरी रही है।

फिर आगे आकर अंग्रज़ों ने हिन्दुओं और सिखों को बांट दिया। 1918 में रोलट ऐक्ट पास किया। रोलट ऐक्ट में था कि हिन्दू हिन्दू को वोट देगा, मुसलमान मुसलमान को, और सिख सिख को वोट देगा। इस प्रकार अंग्रेजों ने देश के लोगों को ओर आगे बांटा....और भी अनेक छोटे-बड़े सम्प्रदायों में अलगाव को बढ़ावा दिया। पहले सिखों की जाति या विचारधारा को गुरुमत कहते थे, सिख मत नहीं कहते थे। उस समय हमारे यहाँ लोग बड़ी श्रद्धापूर्वक उपरोक्त विधि से नामदान दिलवाते थे। किन्तु अब तो हिन्दू-सिख दोनों अलग-अलग से हो गये हैं।

दो बुराइयों ने अपने देश को बर्बाद किया, जिसे गुरु गोविन्द सिंह जी ने दूर करने की कोशिश की थी - एक जातिवाद व दूसरी एकता का अभाव। आजकल पढ़े लिखे लोगों को यह स्पष्ट आभास क्यों नहीं है कि इस समय देश की वास्तविक आवश्यकता क्या है। शायद इसलिये कि सब अपने-अपने वर्ग, जाति, प्रान्त या धर्म का ही हित चाहते हैं। सीमित स्वार्थ के कारण इस सिद्धांत को सब भूल चुके हैं कि एकता में बड़ा बल होता है।

मुझे यह कहते हुए खेद है कि गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने सेवकों को जैसा बनाना चाहा था उनके जीवनकाल में तो ठीक रहा, परन्तु उनके बाद जो देशवासियों की हालत थी, स्वभाव था, वृत्तियां थी उनके कारण फिर देशवासियों को गुलाम बना दिया, परन्तु बलिदानी अब भी हैं। उनकी याद

Scanned by CamScanner

आती है तो प्रेरणा उठती है, जोश आता है परन्तु केवल थोड़ी देर के लिए, क्योंकि समाज में चारों ओर स्वार्थी लोगों और भ्रस्ट नेताओं का साम्राज्य है, जिससे निराशा होती है।

आज देश की जो दशा और विकट परिस्थिति है, उसे बदलने के लिए किसी महापुरुष के आगमन की प्रार्थना करनी चाहिए। आज देश की दशा बहुत बिगड़ती जा रही है, उसको सुधारना है। यह कार्य गुरु गोविन्द सिंह जी जैसा कोई सच्चा संत सत्गुरु अर्थात अध्यात्म शक्ति वाला, शुद्ध कल्याण-भावना और निर्मल आचरण वाला विशेष महापुरुष ही करा सकता है, जो कि स्वयं अपने प्राण तक न्योछावर कर सके। और फिर ..... पंच प्यारों सरीखे उनके शिष्य भी बढ़कर सामने आयें। गुरु भी गुरु बने और शिष्य भी शिष्य। दोनों में मानवीय कल्याण की चेतना और त्यागपूर्ण आन्दोलन की ज़रूरत है।

हमें अपने पूर्वजों से प्रेरणा लेनी चाहिए। साधना का अर्थ केवल आंतरिक अभ्यास ही नहीं है। साधना का अर्थ अपने इष्टदेव के आदर्शों पर चलना और उसके लिए जीवन भी देना पड़े तो बलिदान के लिए तैयार होना है। चाहिये यह कि गुरु गोविन्द सिंह जी जैसे सर्वगुण-सम्पन्न महापुरुष के आदर्श पर चलते हुए सब मिल-जुलकर अत्याचार या अनाचार के विरूद्ध कटिबद्ध हों तथा जन-जन के सुख आनंद और उन्नति-प्रगति का प्रयास करें। परन्तु इसका आधार आध्यात्मिक षक्ति है। इसी के साथ किया गया आत्मिक विकास तो दषम गुरुजी का प्रमुख ध्येय था और उनका अपना जीवन-आदर्श तो रहा ही था।

हमारा ऐसा ही आचरण सीखने का प्रयास उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

होली महोत्सव पर

अहंकार का होली जले प्रभु
प्रेम का रंग चढ़े

फागुन की पूर्णिमा की रात्रि में होली जलाई जाती है। भक्त प्रहलाद को प्रभु की ओर से हटाने के लिये उसके पिता हिरण्यकष्यप ने कई उपाय किये जो निरर्थक सिद्ध हुए। हिरण्यकष्यप ने प्रयास किया कि वो बच्चा राम नाम को छोड़कर पिता का नाम ले, उसे ही ईश्वर माने। ये दूसरा रावण था। यह कहना कि उसको कुछ पता नहीं था, ऐसी बात नहीं थी। शक्तिशाली होने के साथ ही वह बड़ा ज्ञानी भी था। जितना अधिक व्यक्ति योग्यता में आगे बढ़ता है बलशाली होता है, उसमें सूक्ष्म अहंकार आ जाता है।

गुरु भी यही काम करता है। गुरु की आवश्यकता इसलिये होती है कि इन बाधाओं से साधक को बचाता रहे। जो लोग गुरु नहीं करते हैं वो मन के पीछे लगकर अहंकर में फंस जाते हैं और इनकी प्रगति रुक जाती है जैसे कि रावण व हिरण्यकष्यप के साथ हुआ। और ये क्रम हर वक़्त होता रहता है। हर वक्त माँ हमारी परीक्षा लेती रहती है।

अपनी बहन होलिका की सहायता से उसे जलाने की आखिरकार हिरण्यकष्यप योजना बनाई। उसको वरदान था कि वह आग में नहीं जलेगी। परन्तु परमपिता परमात्मा की लीला विचित्र है, बुआ जल जाती है क्योंकि उसे यह पता न था कि यदि उसके साथ कोई और होगा तो उसको आग लग

Scanned by CamScanner

जायेगी। बालक प्रहलाद गोद में बैठा है। उसका रोम-रोम राम-राम कर रहा है। निर्मल, कोमल, आत्मरूप प्रकाशमय बालक को कुछ नहीं होता है। बालक प्रहलाद को तो अटूट विश्वास था जो कि विशेष गुण है-साधक के लिए। क्या हमें ईश्वर के प्रति इतना सुदृढ़ विश्वास है?

इसके बाद भी पिता हिरण्यकष्यप ने पुत्र को बहुत यातनायें दीं। जब प्रहलाद को जलाने के असफल प्रयास से भी उसका राम-नाम एवं प्रभु-गुणगान नहीं रुका तो हिरण्यकष्यप ने खम्भे से बॉधकर मारने की कोशिश की। स्तम्भ गर्म करके कहा गया कि वो उसका आलिंगन करे। इस वक्त वो कुछ घबरा गया। प्रहलाद देखता है कि एक चींटी स्तम्भ पर चल रही है, तो मुझे क्या होगा, मैं भी आलिंगन कर लेता हूँ। यह विष्वास देखकर कि प्रहलाद वहॉ भी विचलित न हुआ तो भगवान ने नरसिंहावतार लेकर अहंकारी राजा का संहार किया।

उसी स्मृति में आज भी होलिका-दहन की प्रथा के अनुसार घर-बाहर होली जलाई जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो यह है कि बुआ (होलिका) के रूप में अज्ञान और अहंकार को जलाया और प्रहलाद की सत्य के प्रतीक रूप में रक्षा हुई। इस नाते भी यह सत्य की विजय का त्यौहार मनाया जाता है।

प्रहलाद की निष्ठा और अटल विश्वास देखकर जब भगवान नरसिंह बड़े खुश हुए हैं तो उससे कहा - "प्रिय पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कुछ वर मांगो।" बालक में सरलता होती है, जो प्रभु को अति प्रियं गुण है। वो कहता है "पूज्य प्रभुजी, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आपका स्नेह चाहिए, आपकी कृपा चाहिए।" फिर भी प्रभु के आग्रह करने पर प्रहलाद का एक और महान गुण प्रकट हुआ : क्षमा का।

Scanned by CamScanner

बैरी–विरोधी के प्रति कोई बुरी भावना न रखते हुए उसके अपराध को भी क्षमा करने की उदारता का।

इसी ईश्वरीय गुण से प्रेरित बालक बोला – "भगवान, आप प्रसन्न रहें। यदि आप चाहते ही हैं कि मैं कुछ माँगू, तो आप मेरे पिता को क्षमा कर दें। प्रभु, मेरे पिता को स्वर्ग प्रदान कर दें।" भगवान पूछते हैं कि "उसने तो तुम्हें इतनी यातनायें दीं फिर भी तुम पिता का कल्याण चाहते हो – ऐसा क्यों?" प्रहलाद का फिर भी यही उत्तर था कि "मुझे नहीं मालूम। वो मेरे पिता हैं जिन्होंने मुझे जन्म दिया है। वो जन्म नहीं देते तो मैं आपके चरणों में कैसे पहुँचता?"

घमंडी राजा के वध और भक्त बालक की विजय पर प्रभू की कृतज्ञता और खुशी में ही सारी प्रजा में हर्षोल्लास मनाया गया, और आनंदपूर्वक होली खेली गयी। शायद इसी परम्परा के नाते आज भी होली जलाकर अगले दिन रंग तथा अबीर–गुलाल, चंदन और गुलाब जल से होली खेलते हैं।

इधर काफ़ी समय से ये होली का त्यौहार बड़ा गंदा हो गया था। अब भी पंजाब में इसका रूप बड़ा भद्दा है, उत्तर प्रदेश में और सम्भवतः बिहार मे वह रूप ऐसा बुरा नहीं है। मथुरा, वृन्दावन में तो बड़े पवित्र तरीके से होली खेली जाती है। प्रेम की रासलीला होती है, वहां मानों भगवान कृष्ण प्रत्येक गोपी के साथ होली खेल रहे हैं। रंग और गुलाल से उन गोपियों की प्रेम की प्रदर्शनी होती है। सच्चे अर्थो में यह दिन एक बड़ा प्रेरणादायक दिन है। रंग – प्रभु प्रेम का रंग, बाहर से ही नहीं खेलना है, रंग अंदर लगाना है, अपने आपको प्रभु के रंग में सराबोर कर देना है।

कहीं–कहीं भगवान कृष्ण और गोपियों की होली खेलने या रासलीला के विषय में भ्रान्ति और ग़लत धारणाएँ व्याप्त

Scanned by CamScanner

है जैसे कि विवाहिता या कुंवारी गोपियाँ अपने अपने घर वर को तज कर भगवान के पास होली खेलने या रासलीला करने कैसे और क्यों आती थीं? इसके विषय में समझना होगा कि एक तो श्रीकृष्ण एक बच्चे ही थे, क्योंकि नौ वर्ष की बाल अवस्था में तो वे मामा कंस का मर्दन करने के लिए मथुरा को चले ही गये थे। दूसरे, ये रासलीला कोई शारीरिक नृत्य नहीं थी। वह तो परमात्मा के प्रेम की प्यासी आत्माओं की आध्यात्मिक–मिलन–बेला में, आत्मविभोर कर देने वाली दिव्यलीला थी। गोपी रूपी आत्मा (साधक) को ऐसी परम–आनंद–अनुभूति की घड़ी में घर–परिवार रूपी सांसारिक मायावी बातों की सुध–बुध न रहना कोई बड़ी बात नहीं है।

बहुत से लोगों की आलोचना का एक और विषय ये है कि भगवान कृष्ण की तो 16,000 से अधिक रानियाँ थीं। यह प्रसंग भागवत् पुराण में भी है। मैं नहीं कह सकता कि वो सच्चाई थी क्योंकि कवि लोग काव्य रचना में बढ़ा–चढ़ा कर बात कहते हैं। पौराणिक साहित्य की गाथाओं के विषय में यह समझना ज़रूरी है कि वेद व्यास जी ने बहुत सी सूक्ष्म तत्वज्ञान की बातों को सरलता से समझाने के लिये रूपक–कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसमें 16000 नाडियों के अधिपति जीवात्मा द्वारा नियंत्रण की सूक्ष्म बात के रूपक को न भी माना जाये तो भी यह सच्चाई नहीं है कि कृष्ण भगवान की हज़ारों रानियाँ थीं। वे तो उनके आश्रयदाता थे।

बात यह थी कि किसी कारण एक राजा ने जिसकी वे रानियाँ थीं ; उसने उनके लालन–पालन और सुरक्षा से हाथ खींच लिया था। बाद में भगवान कृष्ण पहुँचे तो रानियाँ बहुत

Scanned by CamScanner

रोयी हैं कि हमारा क्या होगा, हमारे पति ने हमसे हाथ खींच लिया है, अब हमारा कौन है? भारत में पति के बिना औरत का अस्तित्व अपूर्ण है। भगवान ने इस राजा की उन सोलह हजार रानियों को संरक्षण दिया है। उन्हें उनकी असहाय अवस्था में यह आश्वासन दिया कि " आप चिन्ता नहीं करे। मैं आपकी देख-भाल करूंगा। आपको किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं होने दूंगा।" भगवान ने उनको अपनी स्त्री या धर्मपत्नी कभी नहीं बनाया था।

वैसे भी श्री व्यासजी भागवत मे स्पष्ट करते हैं कि वो सब रानियां अपने-अपने पृथक स्थान पर रहती थीं – पर प्रत्येक रानी यह अनुभव करती थी कि भगवान कृष्ण उसके आस-पास ही हैं – जैसे वृन्दावन में गोपियों की इस अनुभूति को दिखाया जाता है कि प्रत्येक गोपी के साथ भगवान एक जैसी पोशाक और रूप में रासलीला करते हुए लगते थे। यह ग़लत या असंभव नहीं है। ईश्वर सब कुछ कर सकता है। ईश्वर रूप में जो ऐसे महापुरुष आये हैं वो भी ऐसी लीला करते आये हैं और करते रहेंगे। ईश्वर सर्वव्यापक है। ऐसे महापुरुष भी सर्वव्यापक होते हैं।

आप खूब होली खेलें। आपस में स्नेह का आदान-प्रदान करें। परन्तु प्रेम जैसे सतगुणों का प्रसार होना चाहिये। प्रेम, सच्चा प्रेम-ही-प्रेम हो.... निस्वार्थ और निर्मल प्रेम, जिसमें किसी प्रकार की आशा नहीं होनी चाहिए। क्यों करते हैं यह प्रेम, यह हम भीं नहीं जानते हैं। बस प्रेम करना तो हमारी आदत हो जाये। ईश्वर से प्रेम के लिये तो सर्वप्रथम आवश्यक है – प्रहलाद जैसा प्रभु की निकटता का – उनकी प्रतीति का सच्चा दृढ-विश्वास, जो कि बड़ा कठिन है। हम तो अपने अहं

Scanned by CamScanner

के ऊपर ही विश्वास करते हैं, ईश्वर के प्रति उतना विश्वास नहीं है, न ही उतनी श्रद्धा है।

तो इस त्यौहार से हमे प्रेरणा लेनी चाहिए और अपनी साधना को उसी तरह दृढ़ करना चाहिए जैसे प्रहलाद और ध्रुव ने किया। इन दो बच्चों का अपने इतिहास में, भारत की संस्कृति में एक महान स्थान है। बालक ध्रुव के नाम का जो सितारा है वो सबसे ऊँचा, सबसे अधिक चमकीला है। उसमें भी यही दैवी गुण था। यह बात सही है कि किसी के शरीर की पूजा नहीं होती, उसके गुणों की पूजा होती है।

साधना में क्षमा भी एक महान गुण है जो प्रत्येक साधक के हृदय में पुष्ट होना चाहिए और व्यवहार में व्यक्त होना चाहिए। हम कहते हैं कि हमें क्रोध आ जाता है। उसका कारण है कि हमारे हृदय में क्षमा है ही नहीं। क्षमा का गुण सीखना बड़ा कठिन है। लोग बाग चाहते हैं कि बस ऑख बंद करें और प्रभु–रूप का दर्शन हो जाये। नहीं, ये यात्रा बड़ी लम्बी है। जब तक भगवान कृष्ण ने जो गुण भक्त के लिए बताये हैं (गीता के बारहवें अध्याये में, अन्तिम 12 से 20 श्लोक तक) वे गुण स्वाभाविक नहीं बन सकते, जब तक कि हमारे दैनिक आचरण में सहज ही प्रकट नहीं होते। आप यह समझ लीजिए कि अभी हम मंज़िल से दूर हैं, बहुत दूर हैं। सच्चे साधक के लिए उन गुणों को सराहना और अपनाना भी पूजा के समान ही महत्त्वपूर्ण है।

आदमी के गुणों और ईश्वर में जब कोई अन्तर नहीं रह जाता है तो वही दशा पूजनीय हो जाती है। उस स्थिति

Scanned by CamScanner

में पहुँचने पर ज्ञानी कह देता है – *'अहम् ब्रह्मास्मि''*। यह ठीक है ज्ञान साधना में अहं खत्म हो जाता है। मन पर जो आवरण है वह क्षीण हो जाते हैं। आत्मा परमात्मा में विलय हो जाती है। परन्तु सावधान रहें, धोखा हो जाता है जैसे रावण को। रावण कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। प्रकांड विद्वान पंडित था, साधारण चार वर्णो वाला ब्राह्मण नहीं, अपितु, ऐसा ब्राह्मण जिसने ब्रह्म को जाना था। परन्तु अहंकार ने, माया ने ऐसा दबोचा कि वो अपने लक्ष्य से गुमराह हो गया।

और यही स्थिति हिरण्यकष्यप की थी। इसलिये उसको दूसरा रावण कहते हैं। वह भी शास्त्रज्ञ विद्वान था, उच्च कोटि का साधक था और अत्यंत शक्तिशाली भी था। उसने इन्द्र देवता को पराजित किया था क्योंकि इसके भाई की बहू को इन्द्र उठा ले गया था। पौराणिक गाथाओं की ऐसी मान्यता है कि इन्द्र देवता का जिन्होंने भी विरोध किया वो राक्षस कहलाने लगे। वैसे हर विरोधी (जातिवाचक) राक्षस नहीं था। और इसीलिये हिरण्यकष्यप भी दानव के अर्थ वाला राक्षस नहीं था। भला किसी राक्षस का बेटा प्रहलाद जैसा पवित्र आत्मा कैसे हो सकता था? प्रहलाद को राक्षस वाली जाति से कहीं भी संबोधित नहीं किया या माना गया।

होली क्षमा करने का भी महान अवसर है। वास्तव में होली का पर्व तो रात को अर्थात बीते हुए समय के अंधकार में, अहंकार और अज्ञान को जलाकर ईश्वर के प्रेम में रंगते जाना है। होली का मतलब है जो हो चुका है उसको भूल जाइये। जो होना था वो हो गया। नई सुबह में (होली खेलने के समय से) नई उमंग, उत्साह और प्रेरणा भरी नई ज़िन्दगी होनी चाहिए।

Scanned by CamScanner

पारिवारिक और सामाजिक हर क्षेत्र में, प्रेम–प्यार से सद्गुणों के राग–रंग सहित प्रगति करने की नयी पुरूआत होनी चाहिए। नवीनता, आत्मिक और आध्यात्मिक उन्नति की होनी चाहिए।

ईश्वरीय गुणों की – दैवी सद्गुणों की – पूजा उनको अपनाना है। ईश्वर के रूप की पूजा करें परन्तु रूप के साथ–साथ गुणों की भी पूजा करें। फिर गुणों को अपनाने का प्रयास करें। आप किसी प्रकार की भी पूजा करते हों, ईश्वर के गुणों को अपनाने का भरसक प्रयास करना चाहिए। उनको अपने जीवन में ढालने का प्रयास करना चाहिए। फ़िलास्फ़ी के तौर पर बुद्धि में समझ लिया पर व्यवहार में उन गुणों को नहीं उतारा तो क्या लाभ हुआ ?

हमारे हृदय में किसी के प्रति श्रद्धा है तो किसी के प्रति विपरीत भावना है। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता है जिसके आचरण या हृदय में पूर्णरूपेण ईश्वर के प्रिय गुणों के दर्शन होते हों। क्षमा करेंगे, मुझे तो एक भी नज़र नहीं आता। हमारी मंज़िल बहुत दूर है। इसीलिए मैं बार–बार निवेदन करता हूँ कि जब भी हो सके धार्मिक ग्रन्थ या महापुरुषों की वाणी पढें। सबमें एक ही जैसे तथ्य हैं। उन विचारों एवं गुणों का मनन करें तथा धारण करने की कोशिश करें।

सत्संग में आने का लाभ तभी है जब आन्तरिक साधना करते हुए, हमारे दिमाग से मेरा–तेरापन, व्यवहार में भी खत्म हो जायें। न कोई हमारा बैरी या दुश्मन हो न कोई बेगाना या पराया लगे।

Scanned by CamScanner

ना कोई बैरी, ना ही बेगाना सगल संग हमको बन आई।
विसर गई सब तात पराई जब ते साथ संगत मोहे पाई।

बेगाने का अर्थ बड़ा रहस्यमय है। बेगाने का अर्थ है आनात्मा यानी बिना आत्मा वाला। परन्तु ऐसा तो कोई नहीं है। मेरे में जो आत्मा है वैसी ही सबमें आत्मा है। आत्मा के लिहाज़ से हम सब एक हैं। ये बेगानापन और मेरा–तेरापन तो माया के भ्रमजाल का खेल है, ज्ञान नहीं। और जब मैं–मेरापन का अहंकार या दंभ बेहद बढ़ जाता है तो वहीं मनुष्य हिरण्यकष्यप आदि जैसा बन जाता है। उस अवस्था में मनुष्य स्वयं आप भी दुखी होता है और संसार को भी दुखी करता है।

आप सभी दिल खोलकर होली खूब खेलें। इसका वास्तविक संदेश ये है कि होली की प्रेममयी सामाजिक भावना के साथ आत्मिक आनंद की भी अनुभूति करें। होली का सच्चा आध्यात्मिक भाव समझें और भीतर में भी होली खेलें, और उस आनंद को अपने चारों ओर खूब बॉटें। सब में अपनत्व देखते हुए आत्मीयता का अनुभव करके, आत्मिकता का दर्शन करें – अपनी आत्मा का, अपने गुरु का, भगवान का दर्शन करें। सब में वही हैं – प्राणीमात्र में वही तो हैं।

सत्संग में आने पर होली खेलने की भावना को समझने का लाभ तभी है जब गुरुदेव की कृपा से हमारे अहंकार जैसे अवगुण भस्म होते जायें और ईश्वरीय सद्गुणों की रंगत और सुगंध भी हमारे आसपास, घर में, परिवार–पड़ोस और समाज में फैले। प्रभु की दया का रंग आपको सराबोर कर दे और दिन–दिन गहरा होता जाये।

आप सबको होली बहुत मुबारक हो! ⌘⌘

Scanned by CamScanner

दीपावली के त्योहार पर

आत्मिक प्रकाश का ज्वलंत पर्व है दीपमालिका का आनंदोत्सव

देश भर में सुहावने कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली का शुभ पर्व मनाया जाता है। इसको प्रकाश का पर्व कहा जाता है, ज्ञान का पर्व कहा जाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति जिस-जिस प्रकार का उसका मन या मान्यता होती है वो उसी प्रकार भगवान की पूजा करता है। भगवान राम के वापस लौटने की खुशी में भी हम लोग हज़ारों वर्षो से दीपावली मनाते आ रहे हैं। पंजाब में छठे सिख गुरु श्री हरगोविन्द जी की ग्वालियर जेल से मुक्ति पर अमृतसर में दीपावली मनाई गयी थी जो अब भी मनाई जाती है। उधर, दक्षिण भारत में दीपावली के दिन सूर्योदय से पूर्व, भोर में ही "तैल स्नानम" करके भगवान कृष्ण द्वारा नरकासुर नामी राक्षस के संहार के पष्चात् तर्पण-पूजन किया जाता है। इस अवसर पर सब परिवारों में घर-बाहर सफ़ाई करते हैं। नये वस्त्राभूषण पहनकर हर्षोल्लास के रूप में पकवान खाते-खिलाते हैं, बच्चे पटाखे आदि छोड़ते हैं और उत्तर भारतीय नगरों-गांवों की परम्परा के अनुसार रात्रि में घ़र-घर में दीपमालिका भी की जाती है।

इस त्योहार पर अधिकांष लोग गणेष जी की एवं लक्ष्मी जी की पूजा करते हैं। गणेष जी बुद्धि प्रदान करते हैं, लक्ष्मी जी भगवान विष्णु की सहधर्मिणी, धन-सम्पत्ति की

Scanned by CamScanner

अधिष्ठात्री देवी के रूप में हमें चिर आनंद प्राप्ति का आदर्ष प्रदान करती हैं। अपने आत्म–जीवन एवं पतिसेवा भाव से प्रेरणा देती हैं कि उन्होंने भगवान को कैसे संतुष्ट किया। लक्ष्मी जी ने सदा उनके चरणों में रहने का – निरन्तर सेवा करने का जो संकल्प लिया, जीवन–पर्यन्त उस पर दृढ़ रहीं।

कुछ दिन पहले, टी.वी. पर एक नाटक दिखाया गया था जिसमें एक व्यक्ति है, उसको किसी तांत्रिक ने कह दिया कि आज तुम्हारे घर महालक्ष्मी आयेंगी, सो सब दरवाज़े खुले रखना। सब ओर प्रकाष करके श्रद्धा से प्रतीक्षा करना। उसके दोस्त आते हैं, पूछते हैं कि आप क्या कर रहे हो? वह बताता है कि – "मैं लक्ष्मी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आओ, तब तक कुछ खेल (जुआ) हो जाय।" एक ओर लक्ष्मी जी तो रात–दिन पूजा करती थीं विष्णु भगवान की, और अब ये हालत हो गई है कि लोग ये प्रथा प्रचलित कर रहे हैं कि आज के दिन तो जुआ खेलना चाहिए ताकि लक्ष्मी जी की प्रतीक्षा में जागते रहें।

मैं आज की बात नहीं कर रहा, जब मैं बच्चा था, मेरे कानों में आवाज़ पड़ती थी कि 'जो लोग आज के दिन जुआ नहीं खेलेंगे उनको गधे की योनि मिलेगी। लक्ष्मी जी की पूजा के बाद पंजाब के लोग तो जुआ खेलते ही हैं।' मैं उत्तर भारत यू.पी. आदि और यहां के लोगों की बात तो नहीं जानता पर आज अधिकांष लोग जुआ खेलते नज़र आते हैं।

हॉ, जुआ खेलना कोई नयी बात नहीं है, हमारी पौराणिक कथाओं में, भगवान राम के समय में और महाभारत में भी ज़िक्र आता है कि कौरवों, पांडवों ने जुआ खेला। कलियुग में यह बात बढ़ती गयी और बढ रही है, परन्तु यह दुर्व्यसन या कुप्रथा आज की नहीं है, किन्तु समाज

Scanned by CamScanner

में गिरावट काफ़ी अरसे से आती रही है। हमारे शास्त्रों में तो यह नहीं लिखा है। हमारे पूर्वजों ने तो ऐसा कुछ नहीं किया था। यह सामाजिक कुरीति या दुर्दषा कब तक चलेगी?

परन्तु ईष्वर की प्राप्ति के लिये इन बस बातों को छोड़ना होगा। बिना जागृत हुए, बिना सत्संग किये, हम कहें कि जैसे हम बाज़ार से खिलौने लाते हैं ऐसे ही लक्ष्मी जी को भी ले आयें, असंभव है। रात को जागना चाहिए – इस बात से थोड़ा–थोड़ा संकेत तो मिलता है कि 'जागरण' तो करना चाहिए – अमावस की रात, अंधेरी रात होती है, अज्ञान की रात होती है। हम दियों से अपने आप को संतुष्ट कर लेते हैं कि हमको प्रकाष मिल गया। ये भूल है। सच्ची ज्योति यानी आत्मिक प्रकाष के लिये तो मन के अज्ञान से, भीतर के अंधेरे से हमें मुक्त होना होगा।

हम लक्ष्मी जी की पूजा करते हैं। लक्ष्मी जी स्वयं किसकी पूजा करती थीं? लक्ष्मी जी ने भगवान विष्णु को वरण किया। स्वयंवर रचा गया, लक्ष्मी जी ने जयमाला विष्णु भगवान के गले में डाल दी और कहा – "प्रभु, ठीक है, हार तो मैंने डाल दिया परन्तु मेरी एक षर्त है कि मैं जीवन भर आपके चरणों में बैठूंगी, आपके पॉव दबाती रहूंगी। आप मुझे कभी–भी कुछ मांगने के लिए नहीं कहेंगे। मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल आप सदा प्रसन्न और संतुष्ट रहें, बस यही मेरी मांग है।"

हम किसकी पूजा करते है? किसके आगमन के लिए झूठे प्रकाष की तैयारी करते हैं? जिसने अपने जीवन में कुछ मांगा, उसे बुलाने की तैयारी करते हैं कि धन–सम्पति उससे हम मांग सकें। उसके जीवन का अनुसरण करना है तो प्रभु

Scanned by CamScanner

से कहें कि 'हमें संसार नहीं चाहिए, हमें प्रकाष चाहिये। प्रभु हमें प्रकाष दो'। लक्ष्मी पूजा के समय (षुक्र है कुछ घरों में विधिवत पूजा की रीति अभी चली आ रही है) हम उनकी तरह प्रभु-सेवा करने का वर मांगें।

यह प्रकाष का उत्सव है। साल भर हम अंधकार में रहे, भूले रहे, भगवान के चरणों को छोड़कर सोते रहे। एक षुभ दिन आता है कि सोये लोग, गहरी नींद में सोये लोग भी इस रात्रि को जागने का 'नाटक' करते हैं कि लक्ष्मी जी या भगवान के समीप जाने के लिए कुछ तो कर सकें। आज के दिन लक्ष्मी जी की खूब पूजा करें परन्तु भगवान को भी छोड़ें नहीं।

दुख-सुख की मिलौनी का नाम ही संसार है, मन है, जगत है। इस संसार में रहते हुए दुख-सुख तो आयेंगे ही परन्तु दोनों परिस्थितियों में सच्चे जिज्ञासु साधक को अपने इष्टदेव के चरणों को छोड़ना नहीं है। अर्थात् ईष्वर प्राप्ति के लिए क्षण भर के लिए भी साधना भंग न हो।

घर-बाहर की सफ़ाई और सजावट के साथ महत्त्वपूर्ण बात ये है कि भीतर की भी खूब सफ़ाई करें। उस आत्म-स्वरूप भगवान के आगमन के लिये खूब साफ़-सूथरे बनें, निर्मल बनें। निर्मल बुद्धि हो, निर्मल चित्त हो, मधुरवाणी हो ताकि इन गुणों से हम भगवान को रिझा सकें एवं उनकी प्रसादी प्राप्त कर सकें और उस प्रसादी से हम भीतर-बाहर आत्ममय, प्रकाषमय हो जायें। हमारे संस्कार जल जायें। हमारे पिछले अच्छे-बुरे सब कर्म ख़त्म होकर हम निर्मल हो जायें। निर्मल होना यह है कि अतीत ख़त्म हो जाय, भविष्य की चिन्ता न रहे - यह स्वरूप चिदानंद (परम) आत्मा का है।

Scanned by CamScanner

षरीर की षुद्धि तो आवष्यक है पर गंगा स्नान का मतलब केवल जल से स्नान करना नहीं है। षरीर को षुद्ध करके हरिद्वार में, तीर्थो में, महापुरुषों के चरणों में जाते हैं और उनसे ज्ञान लेकर अपने को भीतर से षुद्ध करते हैं। ये नहीं कि स्नान करके तुरंत ही हरिद्वार में (गंगा के समीप एक गली है, वहॉ एक मषहूर हलवाई पूड़ी बेचता है) सब लोग वहीं चले जायें। स्नान करके सर्दी लगती है तो भगवान को भूल जाते हैं, पूड़ी याद आती है। वैसे गंगा स्नान करना बहुत अच्छा है परन्तु जिस पवित्र भाव से स्नान करना चाहिए, उस भाव को हम भूल गये हैं।

बनावटी प्रकाष के लिये तो हम करोड़ों रुपये फूंक देते हैं, पर प्रबुद्ध (समझ रखनेवाले) मानव समाज के लिए तो सच्चे प्रकाष की, आत्मा के प्रकाष की आवष्यकता है। इस अज्ञान रूपी अंधेरे को आत्मा रूपी प्रकाष से मिटाना है। सत्यता अभी ख़त्म नहीं हुई है, परन्तु उसकी मात्रा बहुत कम रह गयी है। हमेषा हृदय की खिड़कियॉ खोलकर रखें। भगवान, गणेष जी या लक्ष्मी जी को रिझाने के लिए यह नहीं कि केवल मिट्टी की मूर्तियां लाकर रखें। ठीक है, वह भी एक साधना है, परन्तु यह भी देखना चाहिए कि उसके पीछे भाव क्या है। जो लोग परमात्मा का ध्यान नहीं कर सकते, वो मूर्ति के माध्यम से ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं। उस मूर्ति के द्वारा उस विराट प्रभु की पूजा करते हैं। ये धारणा ग़लत नहीं है, बहुतों के लिए लाभदायक है।

आरंभ में बच्चा क, ख, ग, पढ़ता है, जो विद्वान लोग हैं बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ते हैं। पढ़ते दोनों ही है। जो मूर्ति की पूजा करते हैं वे क, ख, से षुरू करते हैं और जो ज्ञानी हैं

Scanned by CamScanner

उन्हें मूर्ति की क्या आवष्यकता है? वो ज्ञानी पुरुष परमपिता परमात्मा को – जो सर्वज्ञ है, जिसको मूर्ति की बंदिष में नहीं लाया जा सकता – वो आत्मा परमात्मा की पूजा करता है। मगर षब्द तो प्रकाष में होते नहीं। जो साधना कर रहे होते हैं, जिनमें कमी होती है, वो लक्ष्मी जी का आश्रय लेते हैं ताकि जिस प्रकार लक्ष्मी जी ने भगवान विष्णु को रिझाया था वही युक्ति या साधन वो भी सीख सकें।

लक्ष्मी जी जैसी निरन्तर सेवा की साधना में तो सब कुछ देना पड़ता है। हज़रत ईसा ने और अनेक संतों ने भी यही सिखाया है कि जब तक सर नहीं देंगे अर्थात् अहंकार की आहुति नहीं देंगे, आत्मिक प्रकाष की अनुभूति नहीं होगी। वो अनुभूति बाह्य भी है और भीतर में भी है। इसीलिये सभी ने बताया है कि वो अंदर और बाहर दोनों जगह बैठा है। संतजन तो भगवान और भक्त के बीच में जो दीवार है उसको हटाते हैं।

एक प्रकार से हमारा भारतवासी उस प्रकाष की पूजा करता है। जैसे–जैसे संस्कृति अज्ञान की तरफ़ बढ़ती गयी, हम ऋषियों–मुनियों को, महान संतों को, षुद्ध ब्राह्मणों को छोड़कर मिट्टी की मूर्तियों को ज़्यादा महत्त्व देने लगे हैं। परन्तु हमारे संस्कार अभी तक ख़त्म नहीं हुए, यह ईष्वर की बड़ी कृपा है। हमारी संस्कृति अभी खत्म नहीं हुई – सांकेतिक और प्रतीकों के रूप में अभी भी जीवंत हैं। प्रत्येक व्यक्ति अंतर में भूखा है। वो प्रकाष चाहता है, आनंद चाहता है, ज्ञान चाहता है। किसका ज्ञान? अपनी आत्मा का, परमात्मा का,। सांस्कृतिक परम्पराओं के किसी न किसी रूप में भारतीय जन मानस का ध्येय यही है कि वह उसी परमब्रह्म की अनुभूति

Scanned by CamScanner

चाहता है। हमलोग रात को लक्ष्मी जी की (पैसों की) पूजा करते है, परन्तु पुक्र है साथ ही साथ हम गणेष जी की भी पूजा करते हैं। सारी रात सोते नहीं हैं, षायद प्रतीक्षा करते हैं, लक्ष्मी जी के हृदय मन्दिर में पधारने की।

यह सत्य है कि भारत में रहने वालों के भीतर में सच्ची लालसा है सच्चे प्रकाष के दर्षन करने की, उसको अनुभव करने की। दर्षन ही नहीं वैसा बन जाने की। अभी भी हमारे देषवासियों में संस्कार है। कितनी ही हमारी सामाजिक स्थिति गिर गयी हो, तब भी हम अन्य देषों की तुलना में, आध्यात्मिक आयाम में काफ़ी आगे हैं। परन्तु हमें इसी बात पर संतोष नहीं करना चाहिए।

हमें अपनी सांस्कृतिक चेतना को आज के दिन जगाना चाहिए। स्वयं को भी सच्चे अर्थों में प्रकाषित करना चाहिए एवं अपने परिवारी जन को, बच्चों को और उन्हें जो हमसे कम पढ़े-लिखे हुए हैं, उनको प्रेरणा देनी चाहिए कि सच्ची दीपावली का अर्थ वास्तव में क्या है ताकि उनको भी सच्चे (आत्मिक) प्रकाष की अनुभूति हो - उस अनुभूति से भीतर बाहर सब प्रकाषमय हो जायें।

संतों जैसा यदि एक व्यक्ति प्रकाषमय हो जाता है तो हज़ारो-लाखों का उद्धार हो जाता है। फिर दिये जलाने की जरूरत नहीं होती। उस महापुरुष के आत्म-प्रकाष से लाखों-करोड़ों दिये प्रकाषमय हो जाते हैं।

आज दीपावली के दिन देष को, समाज को जगाना चाहिए, अपने लक्ष्य के प्रति। हम कौन हैं? हम क्या थे? अब क्या हो गये हैं - और यह सब हँसी मज़ाक में नहीं।

Scanned by CamScanner

उत्सव–त्योहारों पर हँसी मजाक वैसे तो अच्छा लगता है, यह भी जीवन का एक अंग है। परन्तु हँसी मज़ाक एक सीमा तक हो, उसमें अनुचित, गलत व्यवहार न हो।

आज के दिन गणेष जी के चरणों में बैठकर दृढ़ संकल्प करें, विषेषकर वो लोग जो मुख्यतः गुरु–चरणों में जाते हैं। गुरु से जो उन्होंने दीक्षा के समय जो वचन दिया है, उसे दृढ़ करें ताकि आने वाले चेतावनी भरे दिन हमारे भीतर षक्ति और प्रकाष दें। हम में आत्मिक ज्योति की आभा हो। हमें खिलौनों और दियों की ज़रूरत न रहे।

पूज्य गुरुदेव आप सबको षक्ति दें ताकि हमारा जो वास्तविक कर्तव्य है, उस पर विचार करते हुए दीपावली की रात्रि को अधिकाधिक भगवान की स्मृति में रहें। यदि हो सके तो रात्रि भर जागरण करना चाहिए। कुछ वर्ष पूर्व मैंने कोषिष की थी कि दिवाली की रात को मिलकर जागरण किया जाय और भजन आदि पढ़े जायें। भजन पढ़ने से नींद नहीं आयेगी। परन्तु वो आयोजन एक–दो वर्ष ही चल सका। हँसी–मजाक करके तो जाग लेंगे या टी.वी. देखते रहें, जुआ खेल लें या क्लबों में चले जायें, परन्तु भगवान की याद में जागृत रह जायें – यह बड़ा कठिन है, नींद आ जायेगी।

वास्तव में, हम इस प्रेरणा देने वाले दिवाली जैसे सांस्कृतिक त्योहार और आध्यात्मिक पर्व का सच्चे अर्थों में सदुपयोग नहीं करते। कोषिष करें कि इस रात्रि में प्रभु की याद में, गुरुदेव की याद में, दीवाली के आत्मिक प्रकाष को ग्रहण करने का प्रयास करें व सफल हों।

गुरुदेव आपको आत्मिक–ज्योति प्रदान करें। ॐॐ

Scanned by CamScanner

मकर संक्रान्ति पर

सात्विक आहार-विहार के सहित उठायें दान-पुण्य का लाभ

हमारे देश में आज मकर संक्रान्ति मनायी जायेगी। लोहरी के बाद आज से माघ के महीने की षुरूआत है, हमारी संस्कृति में सभी पर्व त्यौहारों के पीछे मनुष्य के षारीरिक सामाजिक आनंद के साथ उसके उद्धार के लिये आत्मिक उन्नति का संदेष भी होता है। मकर संक्रान्ति पर्व में भी यही रहस्य छुपा हुआ है। इसको गुरुवाणी इस प्रकार प्रकट करती है :-

''माघ मज्जन संग साधुआ, धूडी कर स्नान।
हरि का नाम ध्याये, सुण सवना नौ करि दान।।
जनम करम मल ऊतरै, मन तैं जाय गुमान।
काम क्रोध न मोहिए, विनसे लोभ सुआन।।
सच्चै मारग चल दिया, उस्तति करै जहान।
अठसठ तीरथ सगल पुण्ण जीव दया परवान।।
जिन्हा मेल्या प्रेम आपणा, नानक तिन कुरबान।
सच्चे मारग कांडिएह जिन पूरा गुरु मेहरबान।।

इस मौसम में लोगबाग हल्का फुल्का भोजन स्वीकार करते हैं। खिचड़ी, चावल और मूंग की दाल की खिचड़ी का उपयोग करते हैं। इसी अनाज को ग़रीबों और ब्राह्मणों में बांटते हैं। परन्तु इसी के साथ यदि मन सूक्ष्म नहीं हुआ, सात्विक और सरल नहीं हुआ तो यह व्यर्थ है।

इस महीने में मौसम में वदलाव आता है। महापुरुष सचेत करते हैं, हम अपने व्यवहार को वदल लें, मौसम के अनुसार बदलें तथा ईश्वर के चरणों की रज प्राप्त करें। संसार

Scanned by CamScanner

में सुख उसी को मिलता है जिसके भीतर में आत्मा प्रकाशित हो उठती है, ईश्वरता आती है। वाणी में मधुरता आ जाती है, उनको सच्चा साधक कहा जायेगा। आइये, उस षबद को फिर पढ़िए –

माध मज्जन संग साधुआ, धूड़ी कर स्नान।

महापुरुष प्रेरणा दे रहे हैं साधु जनों का संग करें। जैसा संग वैसा मन। जैसी संगति होगी वैसा हमारा मन बनेगा। भूलकर भी ऐसी संगति में नहीं जाना चाहिए जहॉ हमें तामसिकता मिलती हो, विचारों में दुष्टता आती हो, हमारा जीवन ख़राब होता हो, इनसे परहेज़ करना चाहिए। संतों का ही संग करें और संतों के बताये हुए रास्ते पर चलने का प्रयास करें – अर्थात अपने जीवन को उनके बताये गये मार्ग पर चलकर वैसा बनायें। आगे देखिए :–

हरि का नाम ध्याये, सुण सबना नौ करि दान।

हरि का नाम परमपिता परमात्मा का नाम रोम–रोम में बस जाये और यह नाम महापुरुषों की पवित्र जिह्वा से सुनें तो और अधिक लाभ होता है। इसके साथ–साथ मन को सूक्ष्म बनाने के लिए ग़रीबों में जाकर दान करो। इसीलिए रिवाज है चावल और मूंग की दाल इस दिन ब्राह्मणों को दान करते हैं। गरीबों में भी बांटते हैं। दान देने से दीनता आती है। जो लोग दान नहीं देते हैं, किसी से सहानुभूति नहीं रखते हैं वे रूखे होते हैं उनकी संगति नहीं करनी चाहिए।

आज के दिन लोग दान तो करते हैं। साथ ही इस खिचड़ी या दाल और चावल खाते भी हैं ताकि पेट की सब बीमारियां ठीक हो जायें, और माघ महीने में सावधान रहना चाहिए। पिछले दिनों लोगों ने खूब पिस्ता, बादाम वगैरह मेवायें खाये और अन्य बहुत कुछ खाया पिया। मौसम के लिहाज़ से वह ठीक था परन्तु अब सावधानी की ज़रूरत है।

Scanned by CamScanner

यदि वहीं भोजन चलता रहा तो हम बीमार पड़ जायेंगे। अपने भोजन को सात्विक बनायें, वह भोजन करें जो तुरंत पच जाये। दाल, चावल, खिचड़ी ऐसा ही सात्विक भोजन है जो जल्दी हज़म हो जाता है। भोजन वही उपयोग करना चाहिए जो जल्दी हजम हो जाये, नहीं तो बीमारी हो जायेगी। महापुरुष सावधान करते हैं कि मौसम में तब्दीली के कारण भोजन पर विशेष ध्यान दें। साथ ही ध्यान रहे कि यह जन्म मरण का चक्कर है, जिसमें अनगिन संस्कारों की मलीनता है। फिर पढ़े –

जनम करम मल ऊतरै, मन तै जाये गुमान।।

वार–वार जन्म लेते हैं तो कर्मो के सस्कार हमारे चित्त पर लिखे हैं। यदि इस महीने में हम सात्विक भोजन और महापुरुषों की संगति करेंगे तो हमारा तन और मन भी निर्मल होता चला जायेगा, तथा हमारे भीतर में काम, क्रोध, तामसिक वृत्तियों एवं राजसिक स्वभाव में परिवर्तन आयेगा। हममें सात्विकता आयेगी, कोमलता आयेगी, हमारा व्यवहार पवित्र होता चला जायेगा।

सच्चे रास्ते पर चलेंगे तो भीतर में तो लाभ होगा ही हमारे व्यवहार से संसार में भी हमारी स्तुति होगी कि ऐसे व्यक्ति का संग करना चाहिए।

''अठसठ तीरथ सगल पुण्ण जीव दया परवान।''

हमलोग नदी पर जाकर स्नान करते हैं, तीर्थो में जाते हैं, पवित्र होने के लिए। परन्तु जो बातें पहले बतायी गयी हैं सात्विक भोजन करना, संतों का संग करना, दर्शन करना, चिंतन- मनन करना उससे अधिक लाभ होता है और सबसे अधिक लाभ यह होता है कि भीतर में कोमलता आती है, दीनता और दया आती है।

Scanned by CamScanner

हमलोगों में कोमलता कम है। हम बड़े कठोर दिल के हैं, सख़्त हैं। पहले अपने बारे में सोचते हैं फिर दूसरे के बारे में सोचते हैं। सेवा वही कर सकता है जो अपने स्वार्थ को नहीं देखता है। जो अपने स्वार्थ को देखता है वह योग्य सेवा नहीं कर पायेगा। वह अपनी प्रसिद्धि के लिए, नाम कमाने के लिए भले ही करे।

दान देते हैं चित्त को कोमल करने के लिए। कोमन मन ही संतों की चरण रज प्राप्त करके परमात्मा तक पहुँच सकता है। जब तक कोमलता हृदय में नहीं आयेगी कितनी भी साधना कर लें, विशेष बात नहीं बनेगी। कोमलता आनी चाहिए। दूसरे को दुःखी देखकर हम भी दुखी हों। छुई–मुई बूटी होती है, दूर से आप हाथ लगाइये वह झुक जायेगी। हम भी दूसरे के दुःखों को देखकर झुक जायें – वैसे ही और दुःखी हों, सहानुभूति हमारे हृदय में हो – केवल शब्दों में नहीं – अतः तन–मन–धन से उसकी सेवा करें।

जिन्हों देवै देव दया करि, सोई पुरख सुजान।

ऐसे व्यक्ति ही सज्जन सुजान हैं। जिनको प्रभु करुणा, सहानुभूति, दान और सेवा की वृत्ति प्रदान करें।

जिन्हा मेल्या प्रभ आपणा, नानक तिन कुरबान।

गुरुदेव कहते हैं, वे लोग महान हैं जिनका परमपिता परमात्मा से मिलन हो गया है – एक क्षण भर के लिए नहीं वे तदरूप हो गये हैं। परमपिता परमात्मा में ऐसे लोगों को ही संत कहते हैं।

सत्पुरुष तिन जानिया, सत्गुरु, जिनका नाम।
सच्चे मारग कांडिएह जिन पूरा गुरु मेहरवान।

परमपिता परमात्मा को जान लेने का मतलब है वैसा ही हो जाना। वही सतगुरु है, संत हैं। वही इस रास्ते से निकल पाये हैं जिनपर सच्चा गुरु या परमात्मा दया करता

Scanned by CamScanner

है। उस परमपिता परमेश्वर की कृपा हो जाती है तो वही व्यक्ति पूर्ण हो जाता है।

तब भी हम तो साधारण अभ्यासी हैं। अभ्यासी का अर्थ है हम बार–बार गिरेंगे और फिर गिर कर उठेंगे। ये नहीं कि गिर गये। एक दिन सत्संग में गये, कुछ मिला नहीं, दूसरे दिन फिर जायेंगे, तीसरे दिन फिर जायेंगे, बार–बार जायेंगे।

हमारा कर्त्तव्य यही है कि जो पढ़ा–या सुना जाये उस पर मनन करें। श्रवण, मनन, निध्यासन और फिर वैसा बनने की कोशिश करें। धीरे–धीरे प्रभु कृपा करेंगे, जैसा उपदेश सुना था और आपने मनन किया था, वैसा आप बन जायेंगे। यही सत्संग है – सत्संग का लाभ है।

धार्मिक पुस्तकों को पढ़ना चाहिए। उसका भी विशेष लाभ है। पढ़ना मनन करना और वैसा बन जाना, यह हमारी संस्कृति का ध्येय है। इसका पालन करना चाहिए। कोई भी व्यक्ति मनन नहीं करता कि आज क्या सुना। पढ़कर भी हम पुस्तक बंद कर देते हैं। महापुरुष कहते हैं कि चाहे एक वाक्य पढ़ो परन्तु उसपर मनन् अधिकाधिक करो, और उसको अपनाने का और अधिक प्रयास करो। हम सब भूले हुए हैं। बच्चे स्कूल से पढ़कर आते हैं घर में सबक याद करते हैं। हम सत्संग में आते हैं, परन्तु बच्चों का भी अनुसरण नहीं करते। बच्चो का स्वभाव भी नहीं अपनाते। मनन कोई भी नहीं करते। कहते हैं समय का अभाव है। मनन करके वैसा बनने की कोशिश करें। वास्तव में अभ्यासी का यही काम है। श्रवण, मनन, निध्यासन ही जीवन है।

मकर संक्रान्ति से एक दिन पहले लोहरी का उमंग भरा उत्सव आता है जो परिवार और पड़ोस में मिलकर खुषी का आनंद देने वाला त्योहार है। पर इसके महत्त्व को समझना चाहिए। लोहड़ी फ़सलों के पकने की खुषी में नाचने–गाने का

Scanned by CamScanner

मौका तो है ही परन्तु ईष्वर को आभार प्रकट करना इसका वास्तविक अर्थ है। केवल शोर मचाने का दिन नहीं है। रात को अग्नि जला ली, खा–पी लिया, शोर मचा लिया बस यही सबकुछ नहीं है। परन्तु आज का दिन गंभीरता का दिन है। शान्ति में बैठकर प्रभु को धन्यवाद देने का उसका उपकार मानने का दिन है।

संक्षिप्त में इन त्यौहारों का संदेष यही है कि हमारा भोजन सात्विक होना चाहिए, विचार, व्यवहार और संगति भी सात्विक होनी चाहिए। सत्संग जितना भी मिल सके, उसका लाभ उठाना चाहिए। ये दो चार बातें पालन करने की बात अपने जीवन में आज से ही प्रारंभ कर देनी चाहिए। आज का दिन ही नहीं, रोज़ इन बातों का ध्यान रखना चाहिए। आज का पर्व एक नयी प्रेरणा दे।

साधना यही है। दस–पॉच मिनट ऑख वंदकर बैठना ही साधना नहीं है। श्रवण, मनन, निध्यासन और फिर वैसा ही होते जाना – यही अभ्यास है। ईश्वर के रूप और गुणों का चिंतन करना, और वैसे ही वनना -- वनने का प्रयास करना है। प्रभु आनंद का सागर हैं। हम भी प्रयास करें, हमारे भीतर में भी आनंद का भान हो, सुख का अनुभव हो।

हम यह कभी नहीं देखते कि जव हम आसन पर बैठे हैं और उठते हैं तो कोई विशेष प्रसन्नता की अनुभूति हुई या नहीं, कोई विशेष प्रेरणा मिली कि नहीं। हम संसार की सेवा करें, संसार की न हो सके तो अपने परिवार की करें, परिवार की भी नहीं कर पायें तो निज सेवा तो आवष्य करें। निज की सेवा यही है कि महापुरुषों के पवित्र वचनों को सुनकर मनन करें, निध्यासन करें और वैसा जीवन वनाने की कोषिष करें। निज सेवा आत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

यही इन पर्वों का परमार्थिक संदेष है। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

जन्मदिन आदि पर

जन्मोत्सव या वर्षगांठ आदि मनाने का गंभीर तत्त्वार्थ समझे

पूता माता की आसीस।
निमख न बिसरो तुमको हर हर सदा भजो जगदीष!
जिस सिमरु सब किलविख नासै पितरि होइ उधारो,
सो हर तुम सद ही जापो, जाका अंत न पारो।

(यह पंक्तियां वाणी सिखों के तीसरे गुरु श्री अमरदासजी के एक प्रसिद्ध षवद की हैं। उनके घर में दौहित्र का जन्म हुआ है, उसी को इस वाणी में आशीर्वाद दे रहे हैं और यही बालक आगे चलकर गुरु अर्जुनदेव जी हुए हैं।

यह आशीर्वाद बच्चे के लिए ही नहीं है। यह आशीर्वाद हम सबके लिए है, परन्तु हम इसको ग्रहण करने की कोशिश नहीं करते। ईश्वर की कृपा मूसलाधार बारिश की तरह सब व्यक्तियों पर पड़ रही है। ये आर्शीवाद, ये अमृत, ये प्रेम, परमपिता परमात्मा बिना किसी सीमा के सबको बांट रहा है।

हरेक माता–पिता अपनी संतान से ये आशा रखते हैं कि वे जीवन में चहुँमुखी उन्नति करें और उनसे आगे बढ़े, उसी प्रकार परमात्मा भी यह चाहता है कि उसकी प्रगति करे और संतान आत्मा जैसी निर्मल, निर्लेप बन जाय। परन्तु हम सब आज माया के चंगुल में फँसे हुए हैं। कोई व्यक्ति इससे निकलना नहीं चाहता है कि जो आशीर्वाद गुरु महाराज प्रदान कर रहे हैं (उपरोक्त शबद में) हम उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

Scanned by CamScanner

जन्म पर उत्सव और फिर जन्मदिन की वर्षगांठ मनाना ये तो एक रिवाज बन गया है कि प्रत्येक वर्ष जन्मदिन मनाया जाता है। परन्तु जैसे मनुष्य मृत्यु से डरता है, सच्चा साधक यह नहीं चाहता कि उसका दूसरा जन्म हो क्योंकि जन्म के समय जो कठिनाई होती है उसके विषय में बड़े-बड़े महापुरुषों ने वर्णन किया है कि बड़ा कष्ट होता है। वो कहते हैं कि हे प्रभु! हमारा दूसरा जन्म न हो, हम नितांत आपकी चरण रज बनकर रहें।

प्रभु ने सबको अपने जैसा आत्मस्वरूप बनाया है। परमात्मा का तो न कोई आदि है न अंत है। वह 'अजूनी' है यानी उसका जन्म नहीं होता, वो अकाल (काल से, मृत्यु से रहित) है। और हमको भी उसने ऐसा ही बनाया था – 'सत् स्वरूप' कि जिसका न कोई आदि-अंत है, और न जन्म है, न कोई मृत्यु है।

मन ने, बुद्धि ने समय की गढ़त की। काल को तीन हिस्सों में बांट दिया – अतीत, वर्तमान और भविष्य। यह सब मन की गढ़त है प्रभु का ऐसा कोई समय विभाजन नहीं है। इसी लिये कहते हैं –

"प्रभु आदि सच्च है, युगादि सच्च है।
हैं भी सच्च, नानक होसी भी सच्च।"

यदि मन के बनाये हुए समय को भी देखें, काल देश को देखें तो भी सब कालों में उसका एक ही रूप था। सच्च (सत्) का मतलब है जिसका कभी विनाश नहीं होता, जिसके रूप में कभी परिवर्तन नहीं आता, नितांत एक ही रस रहता है। वास्तव में हमारा भी ये ही रूप है और अब ये हमारा रूप बिगड़ गया।

सतयुग का इतिहास नहीं मिलता है। सतयुग में सत्य का राजा था। सबकी लम्बी आयु होती थी, सब सत्य स्वरूप होते थे, आत्मा में रहते थे। त्रेता में मन कुछ उठने लगा,

Scanned by CamScanner

जागृत हुआ तो सत्यता का अभाव होना शुरू हुआ। द्वापर में मन और अधिक बलवान हुआ, सत्यता का और अधिक अभाव हुआ। अब कलियुग में तो मन ही मन का साम्राज्य है।

आज का अधिक पढ़ा–लिखा व्यक्ति तो आत्मा का नाम सुनना भी नहीं चाहता। बहुत कम लोग हैं जो आत्मा और परमात्मा के बारे में बात करते हैं या कुछ सुनना चाहते हैं। वो कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा को कौन जाने? फिर आत्मा और परमात्मा जैसे बनना तो बड़ा कठिन है। खाइये, पीजिये और मौज कीजिए, जो होगा सो देखा जायेगा, और यही कलियुग की सामान्य वृत्ति है।

हम सब मन के स्थान पर हैं। महापुरुष कहते हैं कि "तू मन नहीं, तू शरीर नहीं, तू प्राण नहीं, तू बुद्धि नहीं, तू आनंद नहीं, तू तो मेरा ही रूप है।" राधाजी तो एक होकर भी भगवान कृष्ण से अलहदा हो जाती हैं संसार के भक्तों को प्रेरणा देने के लिए, उनके उद्धार के लिए भगवान से प्रेम की रासलीला करती हैं।

ईसाई मानते हैं कि परमात्मा कहता है कि "ऐ ईसा, तू मेरा प्यारा सुपुत्र है, जो कुछ मेरे पास है अर्थात सारे विश्व का सारा धन तेरा ही है, तू ही मालिक है।" परन्तु हज़रत ईसा दीनता में कहते हैं कि "यह सत्य है कि मैं और मेरे पिता एक हैं परन्तु मैं उनका लाड़ला और दीन बच्चा हूँ।" I and my Father are one but I am His son. – यह पराभक्ति है।

यह ठीक है कि जन्म–दिन मनाने चाहिए, ये दिन आते रहें, बिसियों साल आते रहें परन्तु समझ लेना चाहिए कि ये जन्म क्या है, मृत्यु क्या है – ये तो जीवन–यात्रा के अनिवार्य मील पत्थर के समान है। मुझे खुशी होती है कि.....जी के इस परिवार में पूज्य पिताजी की प्रेरणा के परिणाम स्वरूप सारे सदस्य ईश्वर प्रेम में गुंथे हुए हैं। सबका आचरण बड़ा

Scanned by CamScanner

शुद्ध है। सबमें मधुरता है, कोमलता है, यानी ये प्रेरणा देने वाला परिवार है। ऐसे कम उदाहरण मिलते हैं।

इस नवजात बच्चे को भी आप सब आशीर्वाद दें कि ये भी बड़ा होकर पूज्य पिताजी की तरह दीघायु हो और जीवन का जो ध्येय है–सत्यता की अनुभूति करना, अपने आपको पहचानना और फिर ईश्वर दर्शन करना आदि – इसमें सफल हो।

कोई पैसा मांगता है, कोई मकान मॉगता है, कोई विद्या मॉगता है यानी सब लोग सांसारिक वस्तुएँ मॉगते हैं। "पुत्र नचिकेता यमराज के पास गया है, यमराज उससे कहते हैं कि तू मॉग ले विश्व भर की जितनी वस्तुएँ हैं, मैं तुझे सब दे दूँगा, परन्तु सत्यता के प्रति उपदेश मुझ से मत सुनना।"

मगर वह बालक ज़िद करता है कि "मुझे कुछ नहीं चाहिए। सत्यता की अनुभूति की तुलना में संसार का धन, यौवन, सुन्दरता कुछ महत्व नहीं रखते। उस अमर जीवन के आगे कुछ भी नहीं हैं।" आख़िर यमराज ने सत्यता की ओर संकेत किया है, ज्ञान दिया है कि ईश्वर के चरणों को पकड़ें कि जिसकी वह अंश है।

सिकन्दर बादशाह के पास क्या नहीं था ? लेकिन उसने यही वसीयत की कि मरने के बाद मेरे दोनों हाथ खुले हुए रखे जायें ताकि लोग यह सीखें कि धन–दौलत की तरफ़ न दौड़ें। यह मृगतृष्णा कभी पूरी नहीं होती है।

तो जो लोग आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं या जिनकी ईश्वर से तदरूपता हो जाती है वो काल और देश (Time and Space) से मुक्त हो जाते हैं, वो जन्म और मरण दोनों से ही मुक्त हो जाते हैं। उनके लिए जन्मदिन तथा उसकी वर्षगांठ आदि मनाना मात्र अपने प्रिय एवं परिजनों की प्रसन्नता के लिए ही होता है।

गुरुदेव आपको सच्चा ज्ञान दें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

विवाह संस्कार पर

गठबंधन आत्मा-परमात्मा के मिलन का प्रतीक है

संत कबीर दास का एक अति सुन्दर भजन है :--

गावो गावो री दुलहनी मंगल चारा,
मोरे घर आये राजा राम भतारा।
तन रैनी मन पुनरप करिहौं, पांचों तत्त बराती,
राम राय स्यों भॉवर लैहों, आतम ते रंग राती।
नाभि कॅवल में बेदी करिहूँ, ब्रह्म ज्ञान उच्चारा,
राम राय सो दूल्हो पायो, अस वड़ भाग हमारा।
सुर नर मुनि जन कौ तक आये, कोट तेतीस उजाना,
कहैं 'कबीर' मोहे ब्याह चले हैं, पुरख एक भगवाना।।

हिन्दू संस्कृति में या भारत की संस्कृति में हम जितने भी कार्य करते हैं, जीवन के जितने भी पहलू हैं वे सब ईश्वर के दर्शन करने के लिये ही होते हैं। बच्चे का जन्म होता है तो उसकी जिह्वा पर परमात्मा का नाम 'ऊँ' शब्द लिखा जाता है। नामकरण संस्कार किया जाता है और बड़ा होता है तो गुरुकुल जाता है, अपने आचार्य गुरु के चरणों में रहता है। बच्चे बड़े हो जाते हैं शादी हो जाती है। यह विवाह भी हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण संस्कार हैं विवाह एक विशेष साधन है ईश्वर प्राप्ति का। हमारे यहाँ जितनी भी विवाह संबंधी रस्में होती हैं तथा खाना पीना आदि जो कुछ होता है वह सब कुछ प्रसन्नता के लिये किया जाता है। उसका इतना

Scanned by CamScanner

महत्त्व नहीं है, परन्तु जो फेरे किये जाते हैं अर्थात सप्तपदी या भॉवरें जो वर–बधु द्वारा की जाती हैं, उसका विशेष महत्त्व है।

ऊपर कबीर साहब की वाणी आपने पढ़ी। कबीर साहब का भी विवाह हुआ है वह कह रहे हैं – "मैनें भी विवाह किया है, भगवान राम से किया है।" अपनी वाणी से उन्होंने योग साधना बतलायी है। पहले लोग साधना आरम्भ करते थे गणेश चक्र और कुछ नाभि चक्र से। कबीर साहब साधना बतला रहे हैं कि नाभिचक्र से साधना करते–करते यानी जीवात्मा को अपने सुरत को शुद्ध करते हुये भगवान राम के देश में यानी वहॉ ले गये हैं जहॉ उनका संयोग हुआ है। परमात्मा से, कबीर साहब की आत्मा परमात्मा से मिलकर एक हो गई है।

ऐसे ही संस्कार जब फेरे होते हैं कन्या और वर के उस वक्त भी जो पंडित जी पढ़ते हैं उसका सार यही होता है कि वर (लड़का) भगवान विष्णु का प्रतीक बनता है और वधु (लड़की) लक्ष्मी की प्रतीक बनती है और दोनों शपथ लेते हैं। लड़की सब कुछ अपना समर्पण कर देती है भगवान विष्णु के प्रतीक को और शपथ लेती है कि उसका तन मन धन पति की प्रसन्नता के लिए है। और लड़का भगवान विष्णु बनकर शपथ लेता है और विश्वास दिलाता है कि लक्ष्मी की प्रतीक कन्या की, होनी वाली बहू की वह रक्षा करेगा और उसके पास जो कुछ अपना है वह स्वार्थ से तिजोरी में बंद करके नहीं रखेगा। पुरुष की शरीर, पुरुष की बुद्धि, पुरुष का धन जो कुछ भी उसका है वह सब स्त्री के साथ, होने वाली अर्धागंनी के साथ एक जैसा बॉटा जायेगा, यानी दोनों एक जैसे मालिक होंगे।

Scanned by CamScanner

विवाह के समय लड़की लक्ष्मी जी का रूप अर्थात आत्मा का रूप बनती है और वर भगवान विष्णु का स्वरूप बनता है, फिर उनका विवाह सम्पन्न होता है। विवाह का मतलब है योग या मिलन। स्त्री और पुरुष के विवाह का मकसद है योग या मिलन और उसी को ईश्वर दर्शन कहते हैं। संसारिक जीवन भी, गृहस्थ जीवन भी साधना का एक रूप है। स्त्री और पुरुष दोनों आपस में सहयोग दें एक दूसरे को – लड़की समझे कि पति ही सब कुछ है और लड़का समझे पत्नी ही मेरे लिये सब कुछ है और एक दूसरे के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करें। सुख या दुख जो भी आये दोनों साथ–साथ मिलकर भोगें। गृहस्थ की गाड़ी के दो पहिये होते हैं। एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती दो पहियों से गाड़ी चलती है। यदि इस तरह से गृहस्थ की गाड़ी चलायें तो सांसारिक जीवन भी सकुशल और सुखदायी होगा।

विश्वास रखिये इस कार्य में कोई ऑख बंद करने की ज़रूरत नहीं है, कोई शास्त्र पढ़ने की ज़रूरत नहीं है। पति–पत्नी आपस में प्रेम और सहयोग से जीवन व्यतीत करें तो उनको ईश्वर प्राप्ति हो सकती है। दोनों ईश्वर रूप तो हैं ही परन्तु एक दूसरे के साथ सदव्यवहार करते हुए दोनों एक हो जायें तो दो शरीर होंगे, पर मन एक हो जायेगा। जब मन एक हो जाता है, आत्मा व्यक्त हो जाती है तो परमात्मा का दर्शन हो जाता है। कितना सरल रास्ता हमें पूर्वजों ने बतलाया है। परन्तु दुर्भाग्यवंश आजकल की विद्या, आजकल का माहौल ऐसा हो गया है कि पति भी अपना अधिकार जमाता है और पत्नी भी समान अधिकार मॉगती और जमाती है, जिसका नतीजा है कि तनाव उत्पन्न हो जाता है। दो मन–मति कभी

Scanned by CamScanner

भी एक नहीं रह पाते और सारा जीवन दुःखमय ही कटता है।

जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने परमात्मा के साथ अपना साक्षात्कार किया है और हमें बतलाया है कि पुरुष भी जब तक स्त्री के गुणों को, सद्गुणों को धारण नहीं करेगा न तो उसको मानसिक शान्ति मिलेगी – आत्मिक शान्ति तो बड़ी दूर है। पुरुष को स्त्री के गुणों को, लक्ष्मी जी के गुणों को धारण करना ही होगा। भगवान राम जब अश्वमेध यज्ञ करते हैं तो कहा जाता है कि सीता जी का मौजूद होना ज़रूरी है; उनके उपस्थित न होने से यज्ञ कभी सम्पन्न नहीं हो सकता। ईश्वर ने जो विशेष गुण स्त्री को दे रखे हैं वह ईश्वर की बड़ी कृपा है।

पुरुष जब तक स्त्री के गुणों को नहीं अपनायेगा उसका जीवन सफल नहीं होगा। उधर स्त्री के लिये कहा है कि उसको कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। उसको केवल अपना अविरल स्नेह अपने पति को देना है और जो पति के पास प्राप्त धन है या जीवन में प्राप्ति होगी या जो परमार्थ के पथ पर चलने वाला जो कुछ प्राप्त करता है उसका आधा स्त्री को बिना पुरुषार्थ किये मिल जाता है। आप कहेंगे कि वह कैसे होगा। यदि स्त्री पुरुष के साथ प्रेम करती है वह नितांत निरन्तर पति के ध्यान में रहती है कि मैं उसको कैसे रिझाऊँ। खाना–पीना, उसका पहनना–ओढ़ना, उसका व्यवहार आदि जितना भी होता है पति की संतुष्टि के लिये होता है – तो यही सब तो ध्यान की प्रक्रिया है। कितनी सुन्दर ध्यान की प्रक्रिया है। यदि पुरुष भी ऐसा ध्यान करने लगे तो बड़ी ज दी ईश्वर का दर्शन हो जाये। स्त्री अनजाने ही पुरुष का

Scanned by CamScanner

ध्यान करती रहती है इसीलिये यदि उसका प्रेम पुरुष के साथ है तो उसे कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। जो कुछ पुरुष ने किया है उसका आधा ही नहीं उसको सब कुछ मिल जायेगा।

हमारे यहाँ विवाह ठेका नहीं है। आत्मिक बंधन है, दो व्यक्तियों का योग है, मिलन है और यही साधना है। ईश्वर की प्राप्ति करने की। यदि कोई साधक प्रेम को नहीं अपनाता, दीनता को, सहनशीलता को, सेवा को नहीं अपनाता तथा करुणा जैसे सद्गुणों को नहीं अपनाता तब वह ईश्वर की प्राप्ति करने का अधिकारी कैसे हो सकता हैं? और यह सब गुण स्त्री के हैं। जिसके पास वह गुण नहीं हैं उसको सत्संग में आकर, शास्त्र पढ़कर या जैसे भी हो उसके गुणों को सीखना होगा। स्त्री को ज़रूरत नहीं है – परमात्मा ने दे रखे हैं यह गुण। और यदि स्त्री इन गुणों का विकास करती है और अपने पति को सहयोग देते हुए प्रति को प्रेरणा देती है तो दोनों को लाभ होता है।

गुरु नानक भी यही कहते हैं कि खाओ–पीओ, जो मर्ज़ी है करो परन्तु घर में आपस में सहयोग करो। उसी से ही आत्मा के दर्शन होते हैं और परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। एक नहीं दोनों को हो जायेंगे क्योंकि स्त्री आत्मा का प्रतीक है और पुरुष परमात्मा का और साधन है – आत्मा का परमात्मा में लय हो जाने का।

कबीर साहब भी अपना विवाह करते हैं *'हौं तो अपने राम की बहुरिया'*। गुरु नानक भी अपने आपको *'चेरी'* कहते हैं और यह, कि मैं अपने पति को कैसे रिझाऊँ। फिर हमें बताते हैं कि *'भय और भाव की सलाई'* भी डालें यानी काजल डालें भय से, (लज्जा से)

Scanned by CamScanner

कि मैं कोई ऐसी बात न करूँ जिससे मेरे पतिदेव असंतुष्ट हों। भाव यानी स्नेह, जिसमें व्याकुलता हो कि किस तरह मैं अपने पतिदेव को रिझाऊँ।

नई सभ्यता ने हमारे परमार्थ को दूषित कर दिया है। यदि गृहस्थी अपने कर्त्तव्य को निभायें तो प्रभु दर्शन तो बड़ी सरलता से हो जाये। परमात्मा के दर्शन करने के लिए एक मुख्य साधन प्रेम ही है। जो व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता वह ईश्वर की प्राप्ति कैसे कर सकता है – चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष। फिर परिवार के प्रेम को आगे बढ़ाते हैं जिसका विस्तार होता है – माता–पिता की सेवा से, फिर सास–ससुर की सेवा, समाज की सेवा, फिर देश की सेवा और सारे संसार की सेवा द्वारा। घर के ही प्रेम से इस प्रेम का विकास होता है और इसी प्रेम की परिणति से ईश्वर दर्शन होते हैं।

जिस घर में आपस में पति पत्नी में प्रेम है वहॉ कितना आनंद है। उस घर में ग़रीबी भी हो तो भी वहॉ खुशी रहती है। यदि लाखों करोड़ों रुपये भी हों और वहॉ पति पत्नी में बनती न हो तो वहॉ का वातावरण ऐसा होता है कि किसी प्रकार की खुशी नहीं होती उस परिवार में। हम बड़े शहरों में देखते हैं कि ग़रीबों और बड़े–बड़े परिवारों में कितना फ़र्क है। ग़रीब परिवारों में जहॉ उनके घरों में कुछ नहीं खाने को परन्तु उनके घर में खुशी है, सब्र और संतोष से मिला आनंद है। उसका कारण यही है कि वहॉ परिवार में आपस में और मेल–मिलाप और सहयोग है।

ऐसे दम्पति एक दूसरे के लिए अपनी जान देने के लिए भी तैयार हैं और प्रेम में मस्त रहते हैं। प्रेम का दूसरा काम है बलिदान। यही गीता का सार है कि जो भी काम करें वह यज्ञ रूप हो, सेवा रूप हो। अपना जो स्वार्थ हैं, अहंकार है, उसका बलिदान दें तभी तो दूसरे को संतुष्ट कर सकते हैं।

Scanned by CamScanner

कितना प्रेम का सुन्दर रूप है जहाँ परिवार के सब सदस्य इस तरह भगवान के आदेश का पालन करें तो स्वर्ग और कौन सा होता है। यही परलोक है और यही नर्क है। चाहे बच्चे हों या बड़े हों इन बातों का सबको ही मनन करना चाहिये, अपनाने की कोशिश करनी चाहिए।

जो लोग कहते हैं कि साधना में मन नहीं लगता, तो मन न लगने का बड़ा कारण यही है कि प्रेम का अभाव है और प्रेम के अभाव पहले घर में ही होता है। जो घर में पत्नी और स्वजनों से प्रेम नहीं कर सकता वह ईश्वर से क्या करेगा। वह तो सीढ़ी है प्रथम चरण है। हज़रत ईसा उपदेश भी यही है कि " ईश्वर से प्रेम करो, दिलो जान से प्रेम करो" – Love with thy heart, head and soul, mind and soul दूसरा उनका आदेश है – Love thy neighbour as thyself 'नेबर' (पड़ोसी) का भाव है कि जो आप–पास रहते हैं उनके साथ ऐसा प्रेम करो, जैसा आप चाहते हैं कि वह आप से करें।

आप सब में परमात्मा के दर्शन करें, सब व्यक्तियों में परमात्मा के दर्शन करते हुये उनकी सेवा करें उनसे स्नेह करें और उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जो व्यक्ति अपने पड़ोसी के साथ प्रेम नहीं कर सकता वह ईश्वर के साथ प्रेम नहीं कर सकता। ईश्वर के साथ प्रेम यही है कि पड़ोसी के साथ प्रेम हो। पड़ोसी शब्द में कुटुम्ब और निकट समाज के सब सदस्य आ जाते हैं। हमारी संस्कृति में विवाह के आध्यात्मिक महत्त्व को समझकर सुखद प्रेममय गृहस्थ जीवन जीना ऐसी व्यवस्था है जो स्वयं को और संबंधित समाज को आनंदित करती है। इस प्रेम की अनमोल निधि को, परमात्मा ने हमें दिया है सो बच्चे–बड़े सभी को चाहिये कि इस रहस्य को समझें और अपना जीवन आनंदमय बनाने का प्रयास करें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

भारत की नारी

अपने सद्गुणों की महत्ता के कारण पूजनीय रही है

हमारे देश में स्त्री की पूजा बहुत समय से होती रही है, इसका एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे पुरातन इतिहास में नारी अपनी विषेष प्रतिभाओं और चारित्रिक सद्गुणों के लिए पूजनीय मानी जाने वाली महान महिलाओं की परम्परा रही है। ऐसी विभूतियों में सीता, सावित्री, दमयंती, कौषल्या, कैकेयी, मदालसा तथा रूक्मणी और द्रोपदी जैसी पतिव्रता महारानियॉं थीं। तो विद्योत्तमा, लोपा, मुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि जैसी षास्त्रज्ञ व ज्ञानी विदुषियॉं भी थीं। ...और राधाजी, मीरा, सहजोबाई, आदि भक्त नारियॉं भी श्रद्धा की पात्र रहीं।

दूसरी बात यह है कि नारी का सबसे ऊँचा स्वरूप जननी या माता का है। और हमारी सभ्यता का मूलवाक्य– इस संदर्भ में रहा है – *'मातृवत् परदारेषु'* जिसका अर्थ है कि प्रत्येक परायी स्त्री माता के समान है। .....और इसका साक्षात् प्रमाण है कि आज भी कही भी या किसी भी अपरिचित महिला को माताजी (या कम आयु की हों तो बहनजी) कहकर सम्बोधित किया जाता है। अभी भी बंगाल में आप चले जाते हैं तो तीन साल की लड़की को भी हर व्यक्ति मॉं कहकर पुकारेगा।

बीच की सदियों में देश में कुछ ऐसी परिस्थितियॉं आयी कि मुसलमानों के राज्य में शासकों ने बहुत

Scanned by CamScanner

अत्याचार किये। उनके आतंक से और स्त्री–लोलुपता के भय से नारी को चार–दिवारी में बंद होना पड़ा। और यह स्थिति कई सताब्दियों तक चलती रही। इस काल में नारी की समस्त प्रगति और स्वतंत्रता समाप्त हो गयी। तब से स्त्री का जो प्राचीन गौरव था, प्रतिष्ठा थी, सम्मान था, वह बहुत गिर गया।

यह भी सत्य है कि कुछ महापुरुषों (जैसे मनु महाराज या तुलसीदास तथा कबीरजी) ने भी स्त्री के प्रति निन्दा अथवा हीनभाव दिखाते हुए कुछ लिखा है परन्तु उनके दो–चार शब्दों पर ही नहीं जाना चाहिए, उनके पीछे जो भूमिका है जिसके कारण उन्होंने यह शब्द लिखे वह समझनी चाहिए। प्रेम में व्यक्ति भावुक हो जाता है। कभी–कभी वह विवेक खो बैठता है। ऐसा लगता है, मेरी Reading ऐसी है – कि कबीर साहब ने शायद यह मानकर लिखा है जैसे बाढ़ आती है, इसी तरह स्त्री के हृदय में भी जब प्रेमभाव का वेग उमड़ता है तो भावुकता की बाढ़ उठती है, उस बाढ़ को रोकने के लिए कहीं न कहीं बंध लगाने की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने यह भी सिद्ध किया और माना है कि प्रत्येक मनुष्य के तन–मन में शारीरिक इच्छाएं (Biological Urges) होती हैं। इनको जो लोग डाक्टर्स हैं, जिन्होंने शरीर विज्ञान Botany पढ़ी है, वे जानते हैं कि ऐसी इच्छाओं के किशोरावस्था में उठने का समय आता है। प्रत्येक व्यक्ति में उस आयु में चाहे वह कन्या हो या लड़का (सैक्स की) भावनाएँ उत्पन्न होती हैं तो उनको यदि हम कन्ट्रोल में नहीं रखें, अंकुश नहीं लगायें तो हो सकता है, और देखा गया है कि उनसे व्यक्ति को हानि हो जाती है।

मनु जी ने लिखा है या कबीर साहब ने जो कुछ लिखा है वह उस भावावेश को नियंत्रण में रखने के लिए लिखा है।

Scanned by CamScanner

यही नहीं लिखा है कि स्त्री बुरी अथवा हीन है। स्त्री की पूजा तो बहुतों ने पहले से ही करी है। गुरुनानक देव कहते हैं कि "जो स्त्री राजाओं और शूरवीरों को जन्म देती है, जो सारे विश्व का पालन-पोषण करती हैं, उसकी हम बुराई या निन्दा कैसे कर सकते हैं।"

उधर, आध्यात्मिक आयाम में सफलता के लिए तो नारी के स्वरूप और सद्गुणों की आवश्यकता और महत्ता को समझना होगा। ईश्वर की प्राप्ति का साधन है प्रेम। वो कैसा होता है, उससे ईश्वर की प्राप्ति कैसे होती है? जैसे ईश्वर का वर्णन करना कठिन है, वैसे ही प्रेम साधना का वर्णन करना भी सरल नहीं है। परन्तु साधक जिज्ञासुओं को, साधुओं को, ईश्वर के दर्शन के अभिलाषियों को सबने लगभग एक जैसा सुझाव दिया है कि स्त्री प्रेम की प्रतीक है, वही आत्मा की प्रतीक है और जब तक जिज्ञासु स्त्री के सद्गुणों को नहीं अपनायेगा तब तक उसको ईश्वर की प्राप्ति नहीं होगी।

नारी के विशेष गुण

स्त्री प्रेम का प्रतीक है, प्रेम स्वरूप है। प्रेमी के मुख्य गुण क्या हैं – सेवा, त्याग, यज्ञ और बलिदान। स्त्री अपने पति पर तन-मन-धन का बलिदान कर देती है, सर्वस्व होम कर देती है। पुरुष नहीं कर पाते हैं क्योंकि उनमें कठोरता होती है – स्वाभाविक जन्म से ही। इसलिये उनको इस कठोरता से मुक्त होने के लिए, सरल बनने के लिए, पहले साधना करनी पड़ती है। स्त्री को इस प्रकार के गुण प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की साधना नहीं करनी पड़ती। परमात्मा ने यह गुण – बलिदान, सेवा तप और यज्ञ का नारी को स्वाभाविक सहज रूप दे ही दिया है।

गीता पढ़ लीजिये, रामायण पढ़ लीजिये या गुरुग्रन्थ साहब पढ़ लीजिये – बिना यज्ञ के किसी व्यक्ति का उद्धार

Scanned by CamScanner

नहीं होता। यज्ञ का मतलब है कि जो कुछ मेरे पास है वह समाज का है, ईश्वर का है। बलिदान करना अगर किसी को सीखना है तो वह बहनों से सीखें। उदाहरण देते हैं कि जैसे धरती में सहनशीलता होती है, वैसे ही स्त्री में सबका बोझ उठाने की सहनशीलता है।

सहनशीलता का विस्तृत रूप है दुःख या सुख को सहन करना, आलोचना–उत्तेजना को सहन करना, राग–द्वेष को सहन करना, परिस्थितियों के उतार –चढ़ाव आते हैं, उनको सहन करना । और यह सब करते हुए जिसका दामन पकडा है उसके अर्थात अपने आराध्य पति के दामन को नहीं छोड़ना। यही बात साधक के लिए गुरु या ईष्वर के प्रति लागू होती है। यह स्वाभावकि वृत्ति या गुण हम लोगों में, पुरुषों में नहीं है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास जितना बहनों के हृदय में है उतना पुरुषों के हृदय में सामान्यतः नहीं होता। सच्चे अधिकारी में यह गुण होने आवश्यक हैं।

एक आवश्यक सदगुण और है – वह है करुणा का। पूज्य लालाजी महाराज तो इस करुणा के भाव पर बड़े ही प्रसन्न होते थे। फ़तेहगढ़ के मिशन हॉस्पीटल में विदेशी नर्सो को देखकर वह बड़े प्रभावित होते थे कि वे हज़ारों मीलों से, दक्षिण भारत से अपना घर छोड़कर आई हैं और तन–मन–घन से सेवा करती हैं। तुलना करते थे अपने अस्पतालों से जहां डॉक्टरों और नर्सो को तो बडे अच्छे वेतन मिलते हैं और वहां धक्के मिलते हैं मरीज़ों को। वह कहते थे कि जो बाहर से नर्से आती हैं वो करुणा के भाव से आती है। यह करुणा ही निष्काम सेवा करवाती है जिसका वर्णन और महत्त्व गीता में भगवान ने बताया है। वही भाव पूज्य लालाजी महाराज उन बहनों में पाते थे। इसी संबंध में पूज्य दादागुरु महात्मा बुद्ध के भी पॉच मराकवे बताते थे, जिनमें करुणा भी एक थी।

Scanned by CamScanner

करुणा जिसके हृदय में नहीं है, जिसका हृदय पत्थर जैसे हो रहा है, जिसमें सख्ती है, वह भला ईष्वर की प्राप्ति का अधिकारी कैसे हो सकता है। चाहे कोई सुबह से रात तक बैठा साधना करता रहे, कुछ नहीं होने का। लोगबाग कहते हैं ईश्वर के दर्शन क्यों नहीं होते ? ईश्वर के दर्शन कैसे हों? पूज्य गुरु महाराज ने बताया है कि ईश्वर की सच्ची पूजा है ईश्वर के गुणों को सराहना और अपनाने का प्रयास करना। ईश्वर पूजा वही है जब यह गुण अपने भीतर में समा जायें, रोम–रोम में वही गुण रम गये हों। आपका स्वभाव ही वैसा बन जाय। जब ऐसी सहज अवस्था आ जाये तो समझो कि ईश्वर के दर्शन होंगे ही।

ईश्वर के मुख्य गुण हैं – प्रेम, क्षमा, करुणा, त्याग और सेवा। ईश्वर भी सेवा करता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण बड़े स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "मैं सेवा करता हूँ। मैं भी कर्म करता हूँ। मेरा कर्म जो है वह अकर्म है। मेरा कर्म के साथ कोई बंधन नहीं होता। दुनियॉ वालों के जो कर्म होते हैं कर्मो के साथ उनका बंधन होता है, मोह होता है। मैने उसी मोह को तोड़ने के लिए गीता का संदेष दिया है।" तो कर्म तो परमात्मा भी करता है, पर अपने स्वरूप में ही स्थिर रहते हुए जैसे माता अपने बच्चे का पालन–पोषण करती है वह भी तो अपने असंख्यों प्राणियों वाले सारे संसार को पालने की सेवा करता है।

यह सब गुण बहनों को परमात्मा ने खूब प्रदान किये हैं। लोगबाग अकारण ही उनको हीन समझते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। हमारी संस्कृति में उनकी पूजा होती आई है और अब भी होती है। नवरात्रि में देवी की पूजा होती है। छोटी–छोटी लड़कियों की भी पूजा होती है। क्योंकि देवी गुणों की मूर्ति होती है। छोटे बच्चों की इसलिये होती है कि उनमें

Scanned by CamScanner

अभी सरलता है, रागद्वेष उत्पन्न नहीं हुआ। यही गुण बढ़ती जाती कन्या के सांसारिक जीवन का अंग बनते जाते हैं। बीस साल की उम्र तक इन सद्‌गुणों की थ्योरी Theory सीखी, पुस्तकें पढ़ीं, माता–पिता से प्रेरणा ली, तत्पश्चात वैवाहिक जीवन में लड़की प्रवेश करती है। तब वहॉ ससुराल में अपने सद्‌गुणों को (Fine Quality Virtues) को व्यवहार में प्रदर्शित करती है। वास्तव में उसकी पूजा वही बन जाती है।

शायद इसीलिये सब शास्त्र तथा महापुरुष भी कहते हैं कि स्त्री को पूजा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसके होते हुए भी बहनों के पत्र आते हैं या जव बहनें मिलती हैं तो कहती हैं कि उन्हें समय नहीं मिलता। कोई डर नही। पूज्य गुरु महाराज भी बहनों से कहा करते थे "कोई हर्ज नहीं कि तुम पूजा में नहीं बैठ पातीं। हॉ, मगर तुम अपने प्रेम को व्यवहार में लाओ तो यही तुम्हारी पूजा है। शास्त्रों ने ग़लत नहीं लिखा है कि भले ही स्त्री पूजा न करे उसका पति जो कुछ भी करेगा उसका आधा यानी 50 प्रतिशत उसको अपने आप ही मिल जायेगा।"

वास्तव में साधना भी यही प्रेम करना है। शिष्य और गुरु का प्रेम उसी प्रकार का है जैसे कि स्त्री और पति का होता है। दोनो एक जैसे हैं। जिज्ञासु का जो ईश्वर के साथ प्रेम है वह स्त्री और पुरुष के संबंध की तरह ही होता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस तो स्वयं स्त्री बने और उसी रूप में ईश्वर की प्राप्ति की। स्त्री के गुणों को अपनाकर ईश्वर के दर्शन किये। चैतन्य महाप्रभु भी गोपी का रूप धरकर भगवान श्रीकृष्ण का कीर्तन नित्यप्रति किया करते थे और गुरु नानकदेव जी की गुरुवाणी पढ़कर देखिये आधी से अधिक वाणी में उन्होंने

Scanned by CamScanner

अपने आपको स्त्री तथा ईश्वर को पति कहा है। कबीर साहब तो मानते और गाते थे कि *"मैं तो अपने राम की बहुरिया"* हूँ। और भी कितने ही महापुरुष हुए हैं जिन्होंने ऐसा ही किया है।

भले ही आजकल नारी के समान अधिकारों का आन्दोलन हो रहा है। उसको अपने बहुत से अधिकार मिले भी हुए हैं। उसकी प्रकृति ऐसी है कि बाहर से तो माँगती है लेकिन अन्दर से वह सब कुछ बलिदान करती रहती है। और इन माँगों के बावजूद उनकी सेवा की भावना अब भी वैसी ही रही है। त्याग–बलिदान अब भी हो रहा है और आगे भी होगा।

भारत अगर जीवित है इस वक्त यानी हमारी संस्कृति अभी भी वैसी ही जीवंत है तो उसका श्रेय स्त्रियों को जाता है, हमारी माँ–बहनों को जाता है। उनके त्याग–तप भरे जीवन से हमारा देश चल रहा है, हमारी संस्कृति जी रही है, हमारी साधना जीवित है।

यदि पुरुष स्त्री जैसी साधना नहीं कर सकता है तो वह सफल नहीं होगा। इस विषय पर चाहे जितना भी अधिक कहा जाये कम है। संक्षेप में सत्य यही है कि साधक को परमार्थ पथ में पूरी सफलता पाने के लिए स्त्री के सद्गुणों को – जिनमें निस्वार्थ प्रेम, सहनशीलता, करुणामयी सेवा और त्याग विशेष हैं, अपनाना ही होगा। स्त्री रूपी आत्मा यदि उपरोक्त गुण ग्रहण कर ले तो पति–परमेश्वर से उसके आलौकिक प्रेम की प्राप्ति और मिलन निश्चय ही सहज और संभव हो सकेगा।

पूज्य गुरुदेव आपका कल्याण करें। ⌘⌘

Scanned by CamScanner

रामाश्रम सत्संग (रजि.) के आध्यात्मिक प्रकाशन

1.	फ़क़ीरी की सात मंज़िलें (संत सप्त-दर्शन)	रुपये	6.00
2.	जीवन चरित्र : पूज्य महात्मा रामचन्द्र जी महाराज	"	10.00
3	सवाने उमरी : जीवनी पूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी महाराज	"	10.00
4-5	अमृतरस (भाग 1 व 2) प्रत्येक	"	10.00
6-8	**Discourses on Hindu Spiritual Culture - by Rev. Dr. A. K. Banerji (Parts 1,2 & 3 each)**	"	50.00
9	गुरु शिष्य सम्वाद	"	6.00
10-15	संत वचन (भाग 1 से 6) प्रत्येक	"	6.00
16.	संत वचन (भाग 7)	"	10.00
17-18	नवनीत (भाग 1 व 2)	"	5.00
19	अभ्यास में मन न लगने के कारण और उपाय	"	6.00
20.	घटमार्ग		6.00
21.	साधन चतुष्टय	"	2.00
22-24	संत प्रसादी (भाग 1 से 3 - प्रत्येक)	"	6.00
25-26	संत प्रसादी (भाग 4 व 5 - प्रत्येक)	"	7.00
27-29	संत प्रसादी (भाग 6,7 एवं 8 - प्रत्येक)	"	10.00
30.	आराधना (सत्संग की प्रचलित प्रार्थनाएं)	"	4.00
31.	भजन मंजूषा (51 संत-भक्त कवियों की स्वनायें)	"	8.00
32.	भावांजलि (पूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी की जन्मशती पर)	"	15.00
33.	प्रेम का सूर्य (पूज्य डॉ श्रीकृष्ण लाल जी की जन्मशती पर)	"	17.00

प्राप्ति स्थान : भण्डारा समारोहों में एवं

मैनेजर, राम संदेश, 9 रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, गाज़ियाबाद, उ0प्र0

सम्पादक, राम संदेश, 2-बी, नीलगिरि-III, सैक्टर-34, नोएडा, 201307

Scanned by CamScanner